अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-39, अंक-08, 1-15 दिसंबर, 2015

"सार्वजनिक संस्था का अर्थ है, लोगों की स्वीकृति और लोगों के धन से चलने वाली संस्था। ऐसी संस्था को जब लोगों की सहायता न मिले, तो उसे जीवित रहने का अधिकार ही नहीं रहता। देखा यह गया है कि स्थायी सम्पत्ति के भरोसे चलने वाली संस्था लोकमत से स्वतंत्र हो जाती है और कितनी ही बार वह उलटा आचरण भी करती है। हिन्दुस्तान में हमें पग-पग पर इसका अनुभव होता है। कितनी ही धार्मिक मानी जाने वाली संस्थाओं के हिसाब-किताब का कोई ठिकाना ही नहीं रहता। उनके ट्रस्टी ही उनके मालिक बन बैठे हैं और वे किसी के प्रति उत्तरदायी भी नहीं हैं। जिस तरह प्रकृति स्वयं प्रतिदिन उत्पन्न करती और प्रतिदिन खाती है, वैसी ही व्यवस्था सार्वजनिक संस्थाओं की भी होनी चाहिए, इसमें मुझे कोई शंका नहीं है। जिस संस्था को लोग मदद देने के लिए तैयार न हों, उसे सार्वजनिक संस्था के रूप में जीवित रहने का अधिकार ही नहीं है। प्रतिवर्ष मिलने वाला चन्दा ही उन संस्थाओं की अपनी लोकप्रियता और उनके संचालकों की प्रामाणिकता की कसौटी है, और मेरी यह राय है कि हर एक संस्था को इस कसौटी पर कसा जाना चाहिए।"

('सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा' से)

–महात्मा गांधी

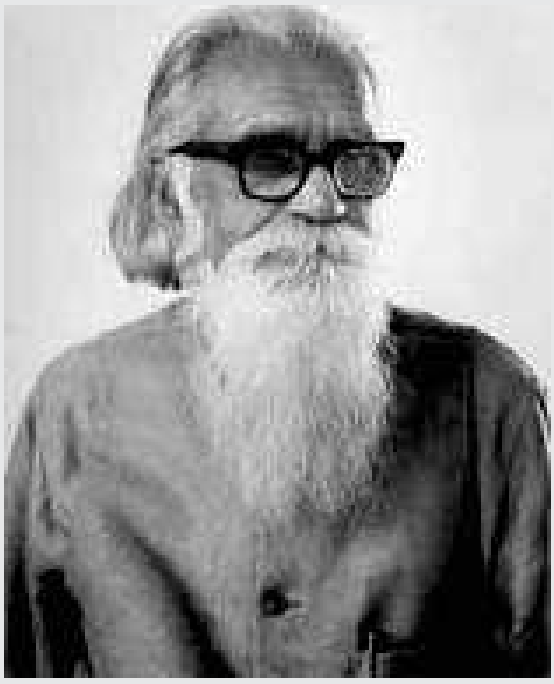

1 दिसंबर : काका कालेलकर-जयन्ती

1 दिसंबर : दादा धर्माधिकारी-पुण्यतिथि

(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित
अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य-अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक
वर्ष : 39, अंक : 08, 1-15 दिसंबर, 2015

संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	पांच रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India

विज्ञापन दर

पूरा पृष्ठ	:	2000 रुपये
आधा पृष्ठ	:	1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ	:	500 रुपये

इस अंक में...

1. संपादकीय : हिंसा,

संपादकीय

हिंसा,

जिसे सामान्य

बिमल कुमार

सामयिक

असहिष्णुता का बढ़ता दायरा

❑ चिन्मय मिश्र

मुझे भरोसा नहीं तुम्हारी आंखों पर,
तुम्हारे कानों पर भी भरोसा नहीं,
तुम जिसे अँधेरा देखते हो,
वह शायद रोशनी है।

–बर्तोल्ट ब्रेख्ट

पिछले कुछ महीनों से सहिष्णुता बनाम असहिष्णुता का विवाद लगातार चर्चा में बना हुआ है। हममें से अधिकांश यह मानकर चल रहे हैं कि वर्तमान सरकार और इसके अधिकांश समर्थक दल महज धार्मिक असहिष्णुता तक अपने को समेटे हुए हैं। लेकिन केन्द्र सरकार की कार्यप्रणाली साफ दर्शा रही है कि असहिष्णुता को उन्होंने अपने शासन-प्रशासन की कार्यशैली ही बना लिया है। विभिन्न संस्थानों में हो रही नियुक्तियों को लेकर उठ रहे विवाद के बाद संविधान का 99वां संशोधन जो कि उच्चतम व उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति को लेकर था और जिसे संसद के अलावा 20 विधानसभाओं की स्वीकृति भी मिल चुकी थी, को सर्वोच्च न्यायालय ने अनुचित ठहरा कर, उस संविधान संशोधन को रद्द कर दिया। ऐसा उन्होंने किस आधार पर किया, यह जानने के लिए इस निर्णय को पढ़ा जाना अत्यन्त आवश्यक है। निर्णय में जिस प्रकार की टिप्पणियां नियुक्तियों को लेकर की गयी हैं, उस पर गौर करने से बहुत सारी बातें स्पष्ट हो जाती हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में कुछ घटनाओं पर गौर करते हैं। इसी अक्टूबर में सूचना का अधिकार कानून ने अपने 10 वर्ष पूरे किये। परम्परानुसार प्रतिवर्ष इन्हीं दिनों में इसकी समीक्षा को लेकर दिल्ली में वार्षिक सम्मेलन होता है। इसमें आर.टी.आई. से संबंधित सभी प्रमुख कार्यकर्ताओं को बुलाया जाता है। प्रधानमंत्री इस सम्मेलन का उद्घाटन करते हैं। इस वर्ष भी यह सम्मेलन का आयोजन हुआ और प्रधानमंत्री इसमें आए। परंतु समारोह के एक दिन पहले उद्घाटन समारोह में सुरक्षा की दृष्टि से भागीदारी न करने देने के उद्देश्य से तमाम लोगों के आमंत्रण रद्द कर दिए गए। इसके विरोधस्वरूप अरुणा राय, निखिल डे, अंजली भारद्वाज सहित तमाम वरिष्ठ कार्यकर्ताओं ने इस उद्घाटन समारोह का बहिष्कार किया था। इसी क्रम में एक और समारोह का जिक्र करना आवश्यक है। हाल ही में दिल्ली में हुए वर्ल्ड इकॉनामिक फोरम के भारतीय चेप्टर इंडियन इकॉनामिक फोरम का एक सम्मेलन दिल्ली में आयोजित हुआ। इसमें भागीदारी हेतु प्रसिद्ध अर्थशास्त्री ज्यां द्रेज को भी आमंत्रित किया गया था। समाचार-पत्रों के अनुसार उन्हें प्रधानमंत्री के आर्थिक सलाहकार अरविन्द सुब्रमण्यम ने स्वयं न्योता दिया था। ज्यां द्रेज जब इस सम्मेलन में भागीदारी करने दिल्ली पहुंच रहे थे, तभी रात में ट्रेन में उन्हें सूचना दी गयी कि उनका आमंत्रण रद्द कर दिया गया है। गौरतलब है ज्यां द्रेज ने, नोबल पुरस्कार से नवाजे गए भारतीय अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन और एंग्स डिएटन, जिन्हें इस वर्ष का नोबल पुरस्कार (अर्थशास्त्र) मिला है, के साथ व्यापक स्तर पर कार्य किया है। उन्होंने इनके साथ मिलकर अनेक ग्रंथ लिखे हैं। इतना ही नहीं रोजगार गारंटी कानून (मनरेगा) को तैयार करने और लागू करवाने तथा भोजन का अधिकार (राइट टू फूड) कानून बनाने और उसे लागू करवाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सारा विश्व इन्हें वर्तमान समय की सर्वाधिक महत्त्वाकांक्षी योजनाएं मानता है।

उपरोक्त दोनों घटनाएं हमें साफ दर्शा रही हैं कि असहिष्णुता अब वैचारिक स्तर पर किस तरह हावी होती जा रही है। सत्ता के शीर्ष पर बैठे लोग अब 'न' तो सुनना ही नहीं चाहते। गांधीजी कहते थे, ''बहुमत के शासन का दायरा बहुत सीमित होता है। कहने का अर्थ यह है कि ब्योरे के मामले में प्रत्येक व्यक्ति बहुमत के सामने झुक जाए। लेकिन यह विचारे बिना कि बहुमत का क्या निर्णय है और क्या नहीं, उसको मानने के लिए तैयार रहना गुलामी है। इसलिए मेरा विश्वास है कि अल्पमत को बहुमत से भिन्न कार्य करने का पूर्ण अधिकार है।'' परंतु आज स्थितियां इतनी विकट हो गयी हैं कि भारत में बहुमत वाली संस्थाएं भी अपने मतानुसार चल पाने में स्वयं को असमर्थ पा रही हैं। इसका एक उदाहरण है प्रधानमंत्री द्वारा हाल में 15 क्षेत्रों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफ.डी.आई.) में भागीदारी बढ़ाने और प्रक्रियाओं को सरल बनाने का आदेश जारी करना। इस निर्णय की घोषणा वित्तमंत्री अरुण जेटली ने एक पत्रकार परिषद में की थी।

गौरतलब है कि एफ.डी.आई. खासकर खुदरा व्यापार अपने आप में एक संवेदनशील मसला है। अभी हम उसके विस्तार में नहीं जाते हुए सिर्फ अपनायी गयी प्रक्रिया और लोकतांत्रिक व्यवस्था तक स्वयं को सीमित करते हैं। देश की अर्थव्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन लाने वाली इन नीतियों पर निर्णय हेतु संसद को तो एक तरफ रख दीजिए, मंत्रिमंडल की बैठक तक में विचार विमर्श नहीं हुआ। पत्रकार वार्ता में इस संदर्भ में पूछे गए एक प्रश्न के जवाब में वित्तमंत्री ने कहा कि इसे प्रधानमंत्री ने उन्हें प्रदत्त विशेष अधिकारों के अंतर्गत स्वीकृति दे दी है और अब इसको बाद में केबिनेट में स्वीकृत करा लिया जाएगा। क्या वित्तीय मामलों में इस तरह के विशेषाधिकारों के प्रयोग का कोई→

वैश्विक परिदृश्य

आतंकवाद की जड़ को पकड़िये

❑ सचिन कुमार जैन

इस सोच को बदलना होगा कि बाजार और हथियारों से एक बेहतर विश्व का निर्माण होगा। इनसे तो केवल मालिक और गुलाम के रिश्ते बनते हैं। जितने के हथियार हमारे शहंशाह खरीदते हैं, उनसे केवल दो साल में आर्थिक गरीबी को आधा किया जा सकता है। एक साल में हर बच्चा समान शिक्षा का अधिकारी हो सकता है। हर बच्चे को गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाएं मिल सकती हैं।

बहुत से लोग कहने लगे हैं कि अब तीसरा विश्वयुद्ध होगा। इनसानी मूल्यों में थोड़ी-सी भी ताकत बरकरार है और यदि समाज अब तक सत्ताओं का पूरा गुलाम नहीं हुआ है, तो अगला विश्वयुद्ध नहीं होगा। अगर हम पेरिस के लोगों के साथ हैं, तो लेबनान और सीरिया के लोगों के साथ भी होना होगा। कट्टरपन की स्वाभाविक परिणति यही है। आतंकवाद को रोकने के लिए हमें कट्टरपन को खत्म करना शुरू करना होगा। कट्टरपन और असहिष्णुता जब जड़ें जमा लेती हैं तो हथियारों का इस्तेमाल करने में कुछ गलत और अनैतिक नहीं लगता। हमें हथियार के बाजार, जमीन की लूट और तेल पर कब्जे के चित्र ही दिखायी देते हैं, जिसे मजहब का जामा पहनाया गया है। चर्चा है पेरिस हमले से आइसिस (इस्लामिक स्टेट) के अंत की शुरुआत हो जाएगी और आइसिस खतम हो जाएगा। लेकिन क्या कोई नया दुर्दांत समूह खड़ा नहीं हो जाएगा? आइसिस नाम के वायरस अपने आप पैदा नहीं होते हैं। इसी दौरान जी-20 यानी दुनिया की बीस सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं के समूह की तुर्की में बैठक हुई। उन्होंने भी चिन्ता व्यक्त की और तय किया कि अब हम और ताकत के साथ आतंकवाद से लड़ेंगे। क्या वास्तव में आतंकवाद के मनोभाव को हथियारों से हराया जा सकता है? बहुत-सी चर्चाओं में एक बात भी वहां आयी कि आर्थिक गैर-बराबरी को खतम करना होगा। यह कोई नहीं कह रहा है कि आर्थिक विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों को उपनिवेश बनाना बंद किया जाएगा। व्लादीमीर पुतिन और बराक ओबामा यह बता चुके हैं कि धर्म का जामा पहना कर आतंकवाद को भस्मासुर बनाने में उनकी कितना भूमिका रही है।

→औचित्य है? क्या कहीं सुनामी आ गयी थी या भारत पर युद्ध मुंह बाए खड़ा था कि प्रधानमंत्री को अपनी मंत्रिपरिषद से भी सलाह मशविरे की आवश्यकता महसूस नहीं हुई और उन्होंने नौकरशाही की अनुशंसाओं को ही सर्वोपरि मान लिया? पता नहीं इस बात में कहां तक सच्चाई है लेकिन दिल्ली के गलियारों में यह बात फैली है कि अब मंत्रिपरिषद के सदस्यों को यदि मंत्रिपरिषद बैठक के लिए प्रस्तुत एजेंडे पर कोई आपत्ति है तो वे उसे सीधे मंत्रिपरिषद की बैठक में नहीं उठा सकते। अपनी आपत्ति उन्हें पहले प्रधानमंत्री कार्यालय में लिखित में भेजनी होगी और वहां से हरी झंडी मिलने के बाद ही वह आपत्ति उठायी जा सकती है। भगवान करे यह अफवाह ही हो। अन्यथा ऐसी विचित्र स्थिति भारतीय लोकतंत्र के समक्ष खड़ी हो जाएगी कि केबिनेट मंत्री भी अपनी बात खुलकर नहीं रख सकेंगे। अब इसे हम आप असहिष्णुता नहीं कहेंगे तो और क्या कहेंगे। प्रधानमंत्री को इंग्लैंड यात्रा व जी-20 की बैठक में तुर्की जाना था। इसके पहले वे अपनी छवि पर लगी बिहार चुनाव की काली छाया से मुक्ति चाहते थे। ऐसे में उन्होंने तमाम ऐसे क्षेत्रों को प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए खोल दिया, जिसका उनका दल और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ भी विरोध करते रहे हैं।

लोकतांत्रिक मूल्यों की प्रति शासक वर्ग, जो कि लोक द्वारा चुना गया है, की बढ़ती असहिष्णुता हमें साफ समझा रही है कि आम जनता को अब अपने प्रतिनिधियों से सीधे प्रश्न करने ही होंगे। हेनरी जॉर्ज ने लिखा भी है, ''समाज व्यवस्था में शोर मचाने और चिल्लाने, शिकायत करने और निन्दा करने, पार्टियां बनाने अथवा क्रांतियां करने से सुधार नहीं होता। वह होता है भावना की जागृति और विचारों की प्रगति से। जब तक विचार ठीक न होगा तब तक सही काम नहीं हो सकता और जब विचार ठीक होगा तो काम भी ठीक होगा।'' यही बात जयप्रकाश नारायण ने आपातकाल के पहले और बाद में हमें समझाने का प्रयास किया था। हमें अपना यह भ्रम छोड़ना होगा कि सत्ता अजेय होती है। बिहार विधानसभा चुनावों ने हमें यह सिखला दिया है कि भारत में अभी विवेक शेष है और मूल्यहीनता पूरी तरह से हावी नहीं हुई है। इसी के साथ उसने यह भी समझा दिया है कि असहिष्णुता की गुंजाइश भी अभी नहीं है। भारत का मध्य आय वर्ग अपनी उपभोक्तावादी वृत्ति के चलते सकारात्मक परिवर्तन को अपनाने में डर रहा है। वहीं दूसरी ओर समाज का वंचित वर्ग अपने अधिकारों को पाने के लिए सतत प्रयत्नशील है। उसकी समस्या यह है कि वह नई सत्ता के आने के बाद जैसे ही थोड़ी-सी चैन की सांस लेना चाहता है वैसे ही दबोच लिया जाता है। पिछले आम चुनाव के बाद भी यही हुआ। ब्रेख्ट इसे कुछ निराले ढंग से समझाते हुए कहते हैं :—

शार्क मछलियों को मैंने चकमा दिया
शेरों को मैंने छकाया
मुझे जिन्होंने हड़प लिया
वे खटमल थे। ❑

शरीर पर विस्फोटक लगाकर भीड़ से टकरा जाने वाला आत्मघाती नवयुवक क्या सोचता है, यह तो हमें जानना ही होगा। आतंकवाद का यह चरम भाव उसमें कैसे पैदा किया गया? एक जाति का व्यक्ति दूसरी जाति के व्यक्ति से प्रेम करे, तो उसकी हत्या करना, कन्या-भ्रूणहत्या या लड़कियों की हत्या करना किसी भी धर्म की महानता के सूचक क्यों माने जाने लगे हैं? इस तरह के दोगलेपन के कायम रहते आतंकवाद को खत्म नहीं किया जा सकता है। अपने-अपने चेहरों पर फ्रांस के झंडे के रंग लगाना और मोमबत्तियां जलाना अमानवीयता और क्रूरता को छिपाने के तरीके हैं। हम इस संकट की जड़ों तक जाने वाला कठिन रास्ता तय नहीं करना चाहते हैं। चौराहे तक मोमबत्ती लेकर जाना आसान होता है। मुद्दा है कि दुनिया में स्वास्थ्य, शिक्षा, घर और खेती पर संसाधन खर्च करने के बजाय हर साल हथियारों पर 50 लाख करोड़ रुपये क्यों खर्च करते हैं? हथियार बनेंगे तो इस्तेमाल भी किये जायेंगे।

आज नीतिगत और नैतिक दोगलापन साफ-साफ नजर आ रहा है। जो समाज अपनी लड़कियों की हत्या के मामले में चुप रहता है, वह पेरिस हमले के प्रति संवेदनशील कैसे हो सकता है? संवेदनशीलता कभी भी तार्किक नहीं होती है, वह तो मूल्यानुगत होती है। एक समाज दलित के ऊंची जाति में विवाह करने पर मानव मल खिलाने या पेशाब पिलाने की सजा देता है, और वही आतंकवाद के खिलाफ शोकसभा करे, तो इसे हम क्या कहेंगे। अमेरिका, पेरिस, इस्लामाबाद, मुम्बई, लेबनान, सीरिया, फिलिस्तीन में होने वाले मानव संहारों पर दोहरा रवैया अपनाया जाना आतंकवाद को बनाये रखने का सबसे कारगर तरीका है।

अब दो मिनट का मौन रखना बंद करना होगा। इसके स्थान पर हर दो मिनट में मूल सवाल पूछना होगा और उनकी जिम्मेदारी तय करनी होगी, जो वास्तव में जिम्मेदार हैं। अपने भीतर शोकसभा करना होगी, बाहर एकजुटता दिखाने से पहले मानवीय मूल्यों से तो खुद को एकजुट कीजिए। याद रखिए पेड़ में फल जमीन के बाहर लगते हैं, किन्तु उसकी जड़ें तो जमीन में ही होती हैं।

पेरिस की घटना दर्दनाक है। इन घटनाओं को राज्य अकेले नहीं रोक सकता है। पूरे समाज को उठना पड़ेगा। समाज आज यह मानने लगा है कि शांति और सुरक्षा केवल राज्य और उसके हथियारों की जिम्मेदारी है। इस वृत्ति को बदलना होगा। यह हमला सिर्फ पेरिस पर नहीं बल्कि पूरे मानव समाज पर हुआ है। भौगोलिक सीमाएं महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। वहशीपन किसी सम्पन्नता और हथियार-सम्पन्नता के सामने कमजोर नहीं पड़ता है। कहा जाता है, तुम इतना कार्बन छोड़ते हो, तो हम भी इतना कार्बन छोड़ेंगे, तुम इतना लूटते हो, तो हम भी इतना लूटेंगे, तुम इतनी नदियां खराब करते हो, तो हम भी इतनी नदियां खराब करेंगे, तुम ऐसे गुलाम बनाते हो, तो हम भी गुलाम बनाएंगे। तुम उपनिवेश बना चुके हो, अब हम भी उपनिवेश बनायेंगे। जब हिंसा का जवाब हिंसा होता है, तब स्याही तो खून से ही बनती है। यदि तथ्यों को जानना चाहते हों तो इतिहास देख लीजिए।

केवल मुसलमान इसमें शामिल हैं और हर इस्लामिक देश इसमें लिप्त है, यह बात हमें बार-बार पढ़ायी गयी है। जब सीरिया में आतंक का धमाका होता है, तब मरता कौन है? जब अफगानिस्तान में तालिबान कहर बरपाता है, तब मरता कौन है, अफगानी ही तो मरता है। ऐसे में यह कैसे कहा जाए कि केवल एक खास समाज ही आतंक का सरमायेदार है? पूरी दुनिया तब ही चिन्तित होती है, जब मुम्बई, पेरिस या न्यूयार्क जलता है। यह भेदभाव बंद होना चाहिए।

जिन्हें हम कट्टरपंथी धार्मिक आतंकवादी संगठन कहते हैं, वास्तव में वे कूटनीतिक वैश्विक सरकार समर्थित आतंकवादी संगठन हैं। इन सबके पीछे दुनिया की बड़ी, सम्पन्न सरकारों के सामरिक, आर्थिक, कूटनीतिक एवं औपनिवेशिक हित होते हैं। एक भी आतंकवादी समूह ऐसा नहीं है, जो दुनिया की किसी न किसी देश की सरकार के सहयोग के बिना पैदा हुआ हो। अब सोचिए कि आतंकवाद से चिन्तित कौन दिखता है? क्यों आम व्यक्ति ही मरता है इन हमलों में? आज अमेरिका आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई में नेता बना हुआ है, और हम भी उसके दरवाजे पर सिर झुकाए खड़े हो जाते हैं। वही अमेरिका जो आतंक का व्यापार करता है और हम उसके व्यापार में साझेदार बनते हैं। क्यों? वास्तव में हम भी आतंक के व्यापार में अब हिस्सेदारी चाहते हैं। आतंक और भय ही आजकल यही सबसे ज्यादा मुनाफे वाले धंधे हैं।

इस सोच को बदलना होगा कि बाजार और हथियारों से एक बेहतर विश्व का निर्माण होगा। इनसे तो केवल मालिक और गुलाम के रिश्ते बनते हैं। जितने के हथियार हमारे शहंशाह खरीदते हैं, उनसे केवल दो साल में आर्थिक गरीबी को आधा किया जा सकता है। एक साल में हर बच्चा समान शिक्षा का अधिकारी हो सकता है। हर बच्चे को गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाएं मिल सकती हैं। लेकिन बहुत सारे लोग और संस्थाएं तो कब्जा करने में विश्वास रखती हैं। कोई धर्म के नाम पर दुनिया पर कब्जा चाहता है, कोई ईंधन और तेल के माध्यम से मालिक बनना चाहता है, कोई बाजार और वित्तीय व्यभिचार के जरिए कब्जा जमाने में जुटा है। और, आतंक इन सबका हमसाया है। लैंगिक भेद, जाति, रंग व श्रम भी इस सियासत के बड़े साधन हैं।

अब हमें कुछ मानक और मूल्य तय करने होंगे और उन्हें लागू करना होगा। एक तरफ हम कहें कि हम महागुरु बनेंगे, पर सिद्धांत अपनाएंगे महाशैतान वाले, तो कुछ नहीं बदलेगा। महाशक्ति नहीं मानवीय मूल्यों की शक्ति का केन्द्र बनने की हिम्मत दिखाना आवश्यक है। ❑

अध्यात्म

सर्वधर्म समभाव क्यों?

❑ महात्मा गांधी

सभी धर्म ईश्वर-दत्त हैं, परंतु चूंकि वे मुनष्य कल्पित हैं और मनुष्य उनका प्रचार करता है, इसलिए वे अपूर्ण हैं। ईश्वर-दत्त धर्म अगम्य हैं। उसे मनुष्य अपनी अपूर्ण भाषा में बांधता है, फिर उसका अर्थ भी मनुष्य ही करते हैं। किसके अर्थ को हम सच कहें? अपनी-अपनी दृष्टि के अनुसार–उनकी दृष्टि जहां तक जाती है, वहां तक–सभी सही है, लेकिन सब गलत हो, यह असंभव नहीं है। इसलिए हमें सब धर्मों के प्रति समभाव रखना चाहिए।

अपने व्रतों में हम जिस व्रत को सहिष्णुता के नाम से पहचानते हैं, उसे यह नया नाम (सर्वधर्म समभाव) दिया है। सहिष्णुता अंग्रेजी शब्द 'टालरेशन' का अनुवाद है। वह मुझे पसंद नहीं आया। दूसरे धर्मों को सहन करने में यह मान लिया जाता है कि वे हमारे धर्म से कुछ घटिया हैं। और आदर में मेहरबानी का भाव है। अहिंसा हमें दूसरे धर्मों के प्रति समभाव सिखाती है। आदर और सहिष्णुता अहिंसा की दृष्टि से पर्याप्त नहीं है। दूसरे धर्मों के प्रति समभाव रखने के मूल में अपने धर्म की अपूर्णता का स्वीकार आ ही जाता है। और सत्य की आराधना तथा अहिंसा की कसौटी यही सिखाती है। यदि हमने संपूर्ण सत्य का दर्शन कर लिया होता, तो फिर सत्य के आग्रह का प्रश्न ही न रह जाता। तब तो हम स्वयं परमेश्वर हो गये होते, क्योंकि हम मानते हैं कि सत्य ही परमेश्वर है। हम पूर्ण सत्य को नहीं पहचानते, इसीलिए उसका आग्रह रखते हैं और इसीलिए पुरुषार्थ को अवकाश है। इसमें अपनी अपूर्णता का स्वीकार आ जाता है। और यदि हम अपूर्ण हैं तो हमारे द्वारा जिसकी कल्पना की गयी है वह धर्म भी अपूर्ण है। स्वतंत्र धर्म संपूर्ण है। लेकिन हमें उसका दर्शन नहीं हुआ है, जिस प्रकार कि हमें ईश्वर का दर्शन नहीं हुआ।

तो हमारा माना हुआ धर्म अपूर्ण है और उसमें हमेशा परिवर्तन होते रहते हैं, आगे भी होते रहेंगे। हों तो ही हम उत्तरोत्तर प्रगति कर सकते हैं, सत्य की ओर, ईश्वर की ओर, प्रतिदिन आगे बढ़ते रह सकते हैं। और यदि मनुष्य द्वारा कल्पित सभी धर्मों को अपूर्ण मानें, तो फिर किसी धर्म को ऊंचा या नीचा मानने का कारण नहीं रह जाता। सभी धर्म सच्चे हैं, परंतु साथ ही सभी अपूर्ण हैं और इसलिए उनमें दोष के लिए अवकाश है। उन सबके प्रति समभाव रखते हुए भी हम उनमें दोष देख सकते हैं। हमें अपने धर्म के दोष भी देखना चाहिए। उन दोषों के कारण हम उसका त्याग नहीं करेंगे, लेकिन दोष अवश्य दूर करेंगे। इस तरह यदि हम सब धर्मों के प्रति समभाव रखें, तो दूसरे धर्मों में हमें जो ग्राह्य मालूम होगा, उसे अपने धर्म में स्थान देते हुए हमें न केवल संकोच नहीं होगा, बल्कि ऐसा करना हमें कर्तव्य मालूम होगा।

सभी धर्म ईश्वर-दत्त हैं, परंतु चूंकि वे मुनष्य कल्पित हैं और मनुष्य उनका प्रचार करता है, इसलिए वे अपूर्ण हैं। ईश्वर-दत्त धर्म अगम्य हैं। उसे मनुष्य अपनी अपूर्ण भाषा में बांधता है, फिर उसका अर्थ भी मनुष्य ही करते हैं। किसके अर्थ को हम सच कहें? अपनी-अपनी दृष्टि के अनुसार— उनकी दृष्टि जहां तक जाती है, वहां तक— सभी सही है, लेकिन सब गलत हो, यह असंभव नहीं है। इसलिए हमें सब धर्मों के प्रति समभाव रखना चाहिए। इसमें अपने धर्म के प्रति उदासीनता आती हो, ऐसी बात नहीं परंतु अपने धर्म पर हमारा जो प्रेम है, उसकी अंधता मिटती है। इस तरह वह ज्ञानमय बनता है और इसलिए ज्यादा सात्विक और निर्मल बनता है। हम सब धर्मों के प्रति समभाव का विकास करें तो ही हमारा दिव्यचक्षु खुलेगा। धर्मान्धता और दिव्य दर्शन में उतना ही अंतर है, जितना उत्तर और दक्षिण ध्रुव में। सच्चा धर्मज्ञान होने पर विविध धर्मों में व्यवधान पैदा करने वाले अंतराय मिट जाते हैं और समभाव पैदा होता है। इस समभाव का विकास करके हम अपने धर्म को ज्यादा अच्छी तरह पहचान सकेंगे।

धर्म मानव स्वभाव का शाश्वत तत्त्व है

धर्म हमारे हर काम में समाया हुआ होना चाहिए। यहां धर्म का अर्थ संप्रदायवाद नहीं है। यह धर्म हिन्दुत्व, इस्लाम और ईसाइयत वगैरह से परे है। यह उनका स्थान नहीं लेता, यह उन्हें एकरस बनाता है और वास्तविकता प्रदान करता है।

धर्म से मेरा क्या मतलब है। मेरा मतलब हिन्दू धर्म से नहीं है, जिसे मैं बेशक और सब धर्मों से अधिक पसंद करता हूं; मेरा मतलब उस मूल धर्म से है, जो हिन्दू धर्म को लांघ गया है, जो मनुष्य के स्वभाव तक का परिवर्तन कर देता है, जो भीतरी सत्य के साथ हमारा अटूट संबंध जोड़ता है, और जो हमें निरंतर अधिक शुद्ध और पवित्र करता रहता है। वह मानव स्वभाव का शाश्वत तत्त्व है, जो अपनी संपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए कोई भी कीमत चुकाने को तैयार रहता है और आत्मा को उस समय तक बिलकुल बेचैन रखता है जब तक उसे अपने स्वरूप का पता नहीं लग जाता, सर्जनहार का ज्ञान नहीं हो जाता तथा सृष्टा के और अपने बीच का सच्चा संबंध समझ में नहीं आ जाता।

मनुष्य धर्म के बिना नहीं जी सकता। कुछ लोग अपनी बुद्धि के घमंड में कह देते हैं कि उन्हें धर्म से कोई वास्ता नहीं। परंतु यह ऐसी ही बात है जैसे कोई मनुष्य यह कहे कि वह सांस तो लेता है, परंतु उसकी नाक नहीं

शेष पृष्ठ 8 पर ...

अध्यात्म

सत्य ही धर्म है

❑ आचार्य शिवानन्द

धर्म रक्षा करता है तथा जनमानस को परस्पर जोड़ता है। इस युग में धर्म के क्षेत्र में धर्मगुरुओं और प्रवचनों की मानो बाढ़ ही आ गयी है। बाढ़ में स्वच्छ जल नहीं आता। विवेकी जन सात्विकता एवं आध्यात्मिकता की धारा क्षीण होने पर भी सदैव अक्षुण्ण रहते हैं। सच्चे साधकों, सिद्ध पुरुषों और पाखंड से दूर रहकर वे प्रकाशदीप को कभी बुझने नहीं देते तथा उसे सदा प्रज्वलित रखते हैं। वे किसी पर निर्भर नहीं होते तथा निर्भय रहते हैं। उनका न कोई सिंहासन (गद्दी) होता है, न वे किसी को उसे सौंपकर जाते हैं। अपने भीतर आध्यात्मिक प्रकाश का अनुभव करना तथा सहजभाव से उसका प्रसार करना ही उनका एकमात्र उद्देश्य होता है। वे संसार में रहकर जल में कमल की भांति निर्लिप्त रहते हैं।

वास्तव में सत्य ही धर्म होता है। सत्य सर्वोपरि होता है तथा वह विविध धर्मों की सीमा में बांधा नहीं जा सकता। जो धर्मगुरु संवाद को त्यागकर दुराग्रह करते हैं, वे सत्य से दूर रहते हैं। जो धर्मगुरु बलपूर्वक यह कहते हैं कि केवल उनके धर्म के अनुयायी ही स्वर्ग के अधिकारी हैं, शेष नहीं, वे सत्य के विरोधी हैं। अन्तर्मुख होकर धर्म मनुष्य को परमात्मा की ओर प्रवृत्त करते हैं तथा बहिर्मुख होकर लोक में श्रेष्ठ जीवन-यापन की कला सिखाते हैं। धर्म का उद्देश्य एक ही होता है—परमात्मा की प्राप्ति तथा सच्चाई और प्रेम से समाज में सार्थक जीवन-यापन की प्रेरणा देना। धर्मों के वे अंश जो परस्पर घृणा और हिंसा (पशुबलि, विधर्मी का नाश) की शिक्षा देते हों, त्याज्य हैं। दुराग्रह से ग्रस्त होना तथा अपनी श्रेष्ठता के दम्भ के कारण भेदभाव और घृणा सिखाना एक दोष है। परमात्मा की प्राप्ति के अनेक मार्ग होते हैं तथा उपासना पद्धतियां भी भिन्न हो सकती हैं, ऐसा स्वीकार करने पर 'सर्वधर्म समभाव' संभव हो सकता है। परस्पर संवाद द्वारा सहअस्तित्व एवं शांति का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि धर्म और विज्ञान परस्पर विरोधी नहीं है बल्कि परस्पर पूरक है। दोनों का उद्देश्य सत्य की खोज करना है किन्तु विज्ञान भौतिक जगत की भौतिक सीमाओं को पार करके सूक्ष्म जगत में प्रवेश द्वारा सृष्टि के मूल रहस्यों की खोज कर सकता है। धर्म एकांगी नहीं होता, उसमें समग्रता होती है, परिपूर्णता होती है। सच तो यह है कि जहां विज्ञान की गति समाप्त हो जाती है, धर्म का क्षेत्र प्रारंभ होता है।

धर्मों का ध्येय सत्य की उपलब्धि एवं अनुभूति करना होता है। जो आस्था सत्य पर आधारित नहीं होती, वह दोषपूर्ण होती है। सत्य की खोज करने वाले अथवा सत्यनिष्ठ पुरुष कदापि दुराग्रह नहीं करते। धर्म जोड़ते हैं, तोड़ते नहीं हैं। धार्मिक व्यक्ति आध्यात्मिक अर्थात आत्मा की ओर अभिमुख होते हैं। वे अनेकता में एकता का अनुभव करते हैं तथा प्रेम, सहयोग एवं सेवा का अनुपालन भी करते हैं। वास्तव में कोई भी धर्म घृणा एवं वैर की शिक्षा नहीं देता किन्तु कट्टरपंथी लोग संकीर्णता के कारण घृणा और वैर का प्रचार करते हैं। पवित्रता की आड़ लेकर किसी व्यक्ति या वर्ग को ज्ञान से वंचित नहीं किया जा सकता। सभी परमात्मा तथा ज्ञान की प्राप्ति के लिए समान रूप से स्वतंत्र हैं।

इस संदर्भ में यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है कि भारत की आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक विरासत क्या है? भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व क्या हैं? मूल की रक्षा होने से ही संपूर्ण वृक्ष की तथा उसके अंगों (पुष्पों, फलों इत्यादि) की सुरक्षा होना संभव होता है। महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि व्यक्ति और समाज के कल्याण का मार्ग कैसे प्रशस्त हो सकता है?

काल का प्रवाह अनंत होता है तथा विकास की प्रक्रिया भी अनंत होती है। व्यक्ति एवं समाज के दोष, अपराध और अज्ञान, विकास प्रक्रिया की गति को सदा के लिए अवरुद्ध नहीं कर सकते। प्रकृति एक सूक्ष्म एवं दिव्य सत्ता से संचालित होने के कारण ज्ञात एवं अज्ञात बलों से व्यक्ति एवं समाज को एक उच्चतर दिशा में मानो धकेलती रहती है। प्रकृति असत्य से सत्य की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर बरबस ले जाती है। जलराशि के मध्य में स्थित भँवर में फँसी हुई वस्तु को, पीछे से आने वाला प्रबल प्रवाह बाहर निकालकर, आगे की ओर बढ़ा देता है। विकास प्रक्रिया में स्थायी रूप से पीछे की ओर जाना संभव नहीं होता। लंबी दौड़ में धावक पीछे दूर तक जाकर ही तीव्रगति से आगे की ओर दौड़ता है। विनाश नवसृजन एवं विकास का आधार होता है। घोर अंधकार प्रकाश की गति को अवरुद्ध नहीं कर सकता। हम पुनः उठने और आगे बढ़ने के लिए ही गिरते हैं। हमारी संघर्षशीलता कभी विलुप्त नहीं होती। विचारों का विरोध एवं टकराहट भी एक दिशा में बढ़ने के लिए आवश्यक भूमिका बन जाते हैं। विरोध के स्वर भी अंततः समन्वय एवं प्रगति की प्रक्रिया को तीव्र कर देते हैं। घृणा के मध्य से प्रेम का स्रोत, अंधकार के गह्वर से प्रकाश की किरण और निराशा के तल से आशा की ज्योति प्रस्फुटित होते हैं। बुद्धिमान मनुष्य का कर्तव्य है कि वह प्रकृति के सात्विक बलों के साथ विवेकपूर्वक सम्बद्ध होकर तथा अपनी लयात्मकता से यथासंभव योगदान देकर जीवन को कृतार्थ कर ले।

जो विवेकशील पुरुष ऋषियों की तत्त्वचिन्तन की परम्परा के साथ अन्तर्तम नाता स्थापित कर लेता है और संत-महात्माओं की जीवनशैली एवं मनीषियों के मंतव्यों से अवगत हो जाता है तथा लोक में जन-जीवन को भी संवेदनशील होकर जान लेता है, वह भारत की आत्मा को समझ सकता है। वह व्यक्ति तथा विश्व के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने में सक्षम हो जाता है तथा उसका जीवन धन्य हो जाता है। ❑

मत-सम्मत

उत्तर तलाशता जलवायु प्रश्न

❑ अरुण तिवारी

जनाकांक्षा है कि जब 11 दिसंबर, 2015 को पेरिस जलवायु सम्मेलन सम्पन्न हो, तो देशों के हाथ मिले हुए हों, दिल खुले हुए हों और सहमति से आगे के कदमों के लिए कमर कसी हुई हों, किन्तु क्या यह होगा? पेरिस में हुए हमले से दुनिया चिन्तित तो है ही, जलवायु सम्मेलन को लेकर भी चिन्ता कम नहीं है। जानकार आशंकित है कि सम्मेलन में गरीब और विकासशील देशों की क्या वाकई सुनी जाएगी या बोन सत्र में मिला आश्वासन झूठा हो जाएगा?

पृथ्वी एक अनोखा, किन्तु छोटा-सा ग्रह है। अभी इसके बारे में ही हमारा विज्ञान अधूरा है। ऐसे में एक अंतरिक्ष के बारे में सम्पूर्ण जानकारी का दावा करना या फिर जाने और कितने अंतरिक्ष हैं; यह कहना, इनसान के लिए दूर की कौड़ी है।

सम्पूर्ण प्रकृति को समझने का दावा तो हम कर ही नहीं सकते; फिर भी हम कैसे मूर्ख हैं कि प्रकृति को समझे बगैर, उसे अपने अनुकूल ढालने की कोशिश में लगे हैं। कोई आसमान से बारिश कराने की कोशिश करने में लगा है, तो कोई प्रकृति द्वारा प्रदत्त हवा, पानी को बदलने की कोशिश में! क्या ताज्जुब की बात है कि इनसान ने मान लिया है कि वह प्रकृति के साथ जैसे चाहे व्यवहार करने के लिए स्वतंत्र है।

प्रकृति ने कितनी सुंदर पृथ्वी बनायी। पहाड़, समुद्र, मैदान बनाए। प्राणवायु के लिए वायुमंडल बनाया। वायुमंडल में मुख्य रूप से ऑक्सीजन और नाइट्रोजन का मुख्य घटक बनाया। सूरज की पराबैंगनी किरणों को रोकने के लिए 10 से 15 किलोमीटर की ऊंचाई पर ओजोन गैस की सुरक्षा परत बनायी।

हमने ओजोन की चादर को पहले कम्बल, फिर रजाई और अब हीटर बना दिया। वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा इसलिए बनायी, ताकि धरती से लौटने वाली गर्मी को बांधकर तापमान का संतुलन बना रहे। इसकी सीमा बनाने के लिए उसने कार्बन डाइऑक्साइड के लिए सीमित स्थान बनाया।

हमने यह स्थान घेरने की अपनी रफ्तार को बढ़ाकर 50 अरब मीट्रिक टन प्रतिवर्ष तक तेज कर लिया। जानकारों के मुताबिक, वायुमंडल में मात्र एक हजार अरब टन कार्बन डाइऑक्साइड का स्थान बचा है; यानी अगले 20 वर्ष बाद वायुमंडल में कार्बन डाइ-ऑक्साइड के लिए कोई स्थान नहीं बचेगा।

नतीजे में कहा जा रहा है कि वर्ष 2100 तक दुनिया 2.7 डिग्री तक गर्म होने के रास्ते पर है। वर्ल्ड वाच इंस्टीट्यूट की रपट भिन्न है। वह अगले सौ वर्षों में हमारे वायुमंडल का तापमान पांच डिग्री सेल्सियस तक अधिक हो जाने का आकलन प्रस्तुत कर रहा है।

ये आंकड़े कितने विश्वसनीय हैं; यह कहना मुश्किल है। हां, यह सच है कि इस तापमान वृद्धि से मिट्टी का तापमान, नमी, हवा का तापमान, दिशा, तीव्रता, उमस, दिन-रात तथा मौसम से मौसम के बीच में तापमान सीधे प्रभाव में हैं। हेमंत-बसंत भारत से गायब हो रहे हैं। पिछले एक महीने में ही तापमान में रिकार्ड परिवर्तन के समाचार हैं।

चेन्नई डूब रहा है और पूर्वी उत्तर प्रदेश सूखे से बेहाल है। मौसम में गर्मी के कारण

...पृष्ठ 6 का शेष

है। धार्मिक मनुष्य के प्रत्येक कर्म का स्रोत उसका धर्म होता है, क्योंकि धर्म का अर्थ है ईश्वर के साथ बंधन।

मेरे धर्म में और उस धर्म से निकले हुए देशप्रेम में जीव-मात्र का समावेश होता है। मैं मानव-प्राणी कहलाने वालों के साथ ही नहीं परंतु सब प्राणियों के साथ, यहां तक कि कीड़े-मकोड़ों के साथ भी भाईचारा या एकता सिद्ध करना चाहता हूं। अगर आपको आघात न लगे तो मैं पृथ्वी पर रेंगने वाले प्राणियों के साथ भी तादात्म्य सिद्ध करना चाहता हूं, क्योंकि हम एक ही ईश्वर की संतान हैं, और ऐसी हालत में सब प्राणी, चाहे वे किसी भी रूप में प्रकट हों, वास्तव में एक ही हैं।

संसार के अन्य धर्मों के प्रार्थनापूर्ण अध्ययन के प्रकाश में और इससे भी अधिक गीता में बताये हुए हिन्दू धर्म की शिक्षा के अनुसार जीवन बिताने की कोशिश के फलस्वरूप प्राप्त हुए अनुभवों के आधार पर मैंने हिन्दू धर्म को विस्तृत अर्थ देने का प्रयत्न किया है। परंतु यह अर्थ खींचतान कर हरगिज नहीं किया गया है। और हिन्दू धर्म भी वह नहीं जो अपने विपुल धर्मग्रंथों में गड़ा पड़ा है; मेरा मतलब उस सजीव धर्म से है, जो माता की तरह अपने पीड़ित बालक से बात करता हो। मैंने जो कुछ किया है, वह पूरी तरह इतिहास सम्मत है। मैं हमारे पूर्वजों के पदचिह्नों पर चला हूं। एक समय था जब वे कुछ देवताओं को खुश करने के लिए पशुओं का बलिदान करते थे। वे उसे यज्ञ कहते थे। उनकी संतानों ने यानी हमारे उन पूर्वजों ने, जो बाद में आये, 'यज्ञ' शब्द का भिन्न अर्थ किया और सिखाया कि बलिदान हमारी अपनी नीच वृत्तियों का होना चाहिए। जो मनुष्य यह कहता है कि धर्म का राजनीति से कोई संबंध नहीं है वह धर्म को नहीं जानता, ऐसा कहने में मुझे संकोच नहीं होता और न ऐसा कहने में मैं अविनय करता हूं। ❑

गेहूं की बोआई पिछड़ रही है। मच्छरों का हमला जारी है। नवंबर के तीसरे सप्ताह में भी दिल्लीवासी रात को धीमे ही सही, पंखा चलाने को मजबूर हैं। कीटाणुओं की प्रजनन दर और बीमारियां बढ़ेगी ही, सो बढ़ रही है।

अब हम क्या करें? : अब पृथ्वी के देश, कार्बन उत्सर्जन में घटोत्तरी की बात कर रहे हैं। हाल के सम्मेलनों में अमेरिका ने अपने उचित हिस्से का पांचवां हिस्सा कार्बन घटोत्तरी की बात की है। 1850 को आधार वर्ष मानें, तो चीन ने 2,371 मीट्रिक टन कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जित की है, किन्तु उसने 2030 तक 488 मीट्रिक टन कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन कम करने का प्रस्ताव रखा है।

भारत ने 54 मीट्रिक टन कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जित की है। उसने 2030 तक 280 मीट्रिक टन कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन कटौती करने की घोषणा की है। अक्टूबर माह में चली तैयारी बैठकों में की गयीं ऐसी सारी घोषणाएं, वर्ष 2020 तक वैश्विक तापमान वृद्धि को दो डिग्री तक कम करने के लक्ष्य को सामने रखकर की गयीं।

बोन में हुई तैयारी बैठकों में मिले सभी देशों के प्रस्तावों को 55 पेजी दस्तावेज के रूप में एक साथ किया गया है। पांच दिवसीय बोन सत्र में तैयारी बैठक ही आगे पेरिस सम्मेलन का आधार होगी। अब चुनौती है कि ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कटौती पर वैश्विक सहमति कैसे सुनिश्चित हो? यह सुनिश्चित करने के लिए ही 30 नवंबर से 11 दिसंबर, 2015 तक पेरिस जलवायु सम्मेलन चलेगा।

पेरिस सम्मेलन : जनकांक्षा और आशंका : जनाकांक्षा है कि जब 11 दिसंबर, 2015 को पेरिस जलवायु सम्मेलन सम्पन्न हो, तो देशों के हाथ मिले हुए हों, दिल खुले हुए हों और सहमति से आगे के कदमों के लिए कमर कसी हुई हों, किन्तु क्या यह होगा? पेरिस में हुए हमले से दुनिया चिन्तित तो है ही, जलवायु सम्मेलन को लेकर भी चिन्ता कम नहीं है। जानकार आशंकित है कि सम्मेलन में गरीब और विकासशील देशों की क्या वाकई सुनी जाएगी या बोन सत्र में मिला आश्वासन झूठा हो जाएगा? उत्सर्जन कटौती उपायों के कारण अर्थव्यवस्थाओं पर पड़ने वाले नकारात्मक असर की एवज में विकसित देशों द्वारा वर्ष 2020 तक विकासशील और गरीब देशों को 100 अरब अमेरिकी डॉलर धनराशि देने का प्रस्ताव है। इसकी व्यवस्था कैसे होगी? इसके वितरण का आधार क्या होंगे? कार्बन बजट, एक मसला है।

जानमाल के नुकसान, दूसरा मसला है। उत्सर्जन कटौती में सहयोगी तकनीक का हस्तांतरण जरूरी है। अतः तकनीकों को पेटेंट मुक्त और हस्तांतरण को मुनाफा मुक्त रखने की मांग, एक अन्य मसला है। विकसित व अग्रणी तकनीकी देश, इन मसलों पर स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत करने में अभी भी आनाकानी कर रहे हैं। वे चालाकी में हैं कि इस पर पेरिस सम्मेलन के बाहर हर देश से अलग-अलग समझौते की स्थिति में अपनी शर्तों को सामने रखकर दूसरे हित भी साध लेंगे।

सीएसई की महानिदेशक, सुनीता नारायण का कहना है कि स्पष्ट रूपरेखा होनी चाहिए कि कैसे करेंगे। यदि विकसित देशों ने न माना, तो वे अन्य देशों के अपने ग्रीनहाउस गैसें कटौती लक्ष्य को बढ़ाने को कह सकते हैं। इससे विवाद होगा। तैयारी बैठकों में भी विवाद हुआ।

गौर कीजिए कि 96 देशों का एक प्रतिनिधिमंडल चाहता था कि बोन में हो रहे पेरिस समझौते के प्रस्ताव को और संतुलित बनाया जाये, अध्यक्षीय पैनल के दो सदस्यों की राय से उस प्रतिनिधि मंडल को बंद कमरे के हुए समझौते से अगले चार दिन के लिए अलग रखा गया। जापान समर्थित इस प्रतिनिधि मंडल में भारत, चीन, जी 77 के भी सदस्य थे। अमेरिकी और यूरोपीय सदस्य चुप रहे।

कुल मिलाकर चित्र यह है कि पृथ्वी पर जीवन बचाने जैसे गंभीर मसले पर गरीब और विकासशील देश, आर्थिक सिद्धांत को अमल में लाने की जिद् ठाने बैठे हैं। तर्क है कि जिसने जितना ज्यादा कार्बन उत्सर्जन किया, उत्सर्जन रोकने का उसका लक्ष्य उतना अधिक और त्वरित होना चाहिए।

दंडस्वरूप, उसे उतनी अधिक धनराशि कम उत्सर्जन करने वाले और गरीब देशों को उनके नुकसान की भरपाई में देनी चाहिए। गलती का पश्चात्ताप करने की ईमानदारी और हिम्मत विकसित देशों में भी नहीं है। इसी भिन्न रवैए के कारण, रियो डि जिनेरो में हुए प्रथम पृथ्वी सम्मेलन (03 से 14 जून, 1992) से लेकर अब तक हुई सहमति की कवायदें, परवान नहीं चढ़ पायीं। 23 वर्षों से यही चल रहा है। पेरिस सम्मेलन भी इस रवैए से मुक्त नहीं है।

प्रश्न कई : इस रवैए से मुक्ति के लिए हम क्या करें? पेरिस जलवायु सम्मेलन में समझौते के आधार, आर्थिक हों अथवा कुछ और? क्या जलवायु परिवर्तन का मसला इतना सहज है कि कार्बन उत्सर्जन कम करने मात्र से काम चल जाएगा या पृथ्वी पर जीवन बचाने के लिए करना कुछ और भी होगा? भारत का पक्ष और पथ क्या हो?

जलवायु परिवर्तन के कारण और दुष्प्रभावों के निवारण में हमारी व्यक्तिगत, सामुदायिक, शासकीय अथवा प्रशासकीय भूमिका क्या हो सकती है? सबसे महत्त्वपूर्ण यह कि जलवायु परिवर्तन, क्या सिर्फ पर्यावरण व भूगोल विज्ञान का विषय है या फिर कृषि वैज्ञानिकों, जीव विज्ञानियों, अर्थशास्त्रियों, समाजशास्त्रियों, चिकित्सा-शास्त्रियों, नेताओं और रोजगार की दौड़ में लगे नौजवानों को भी इससे चिन्तित होना चाहिए? ऐसे तमाम प्रश्नों के उत्तर की तलाश जरूरी है। क्या हम-आप तलाशेंगे? ❑

मत-सम्मत

महिलाओं पर कहर बरपाता जलवायु परिवर्तन

❑ हिलेरी बांबरिक

जलवायु परिवर्तन के प्रमुख कारक महिलाओं एवं लड़कियों के स्वास्थ्य को सीधे-सीधे नुकसान पहुंचाते हैं। घर के अंदर लकड़ी से खाना बनाने की वजह से प्रदूषण होता है और यहां भी सर्वाधिक प्रभावित लड़कियां और महिलाएं ही होती हैं। चूल्हे से फैले प्रदूषण की वजह से फेफड़ों की क्षमता में कमी, टीबी एवं निमोनिया जैसी बीमारियां भी बड़ी संख्या में होती हैं। प्रतिवर्ष करीब विश्वभर में 40 लाख महिलाएं समय से पूर्व ही मृत्यु की शिकार हो जाती हैं।

वैश्विक नेता यदि लैंगिक समानता को लेकर गंभीर हैं तो उन्हें जलवायु परिवर्तन के संबंध में भी गंभीर होना होगा। दिसंबर में होने वाली महत्त्वपूर्ण पेरिस जलवायु वार्ता में जलवायु संबंधी कार्यवाही को लेकर सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं पर्यावरण समूहों जैसे विश्व स्वास्थ्य संगठन, डॉक्टर्स फार क्लायमेट एक्शन एवं नो मोर कोल माइन्स (अब और कोयला खदान नहीं) ने स्पष्ट तौर पर कुछ बातें कही हैं। परंतु ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी को लेकर एक अन्य बाध्यकारी तथ्य है कि वर्तमान में जलवायु संबंधी अकर्मण्यता महिलाओं की आजीविका और उनके जीवन को नुकसान पहुंचा रही है।

विषम प्रभाव : जलवायु परिवर्तन का प्रभाव विश्व के अमीर देशों के बजाय गरीब देशों पर बहुत ज्यादा पड़ता है। इन समाजों की महिलाओं के लिए एक बुरी खबर यह है कि इसके प्रभाव लैंगिक-तटस्थ नहीं होते। अमीर समुदाय जलवायु जनित घटनाओं जैसे लू या गरम हवा चलना, बाढ़ से निपटने में लगने वाली आर्थिक लागत और स्वास्थ्य प्रभावों से ठीक से निपट सकते हैं लेकिन गरीब देश इस मामले में भाग्यशाली नहीं होते। गरीबी खराब स्वास्थ्य, सीमित आधारभूत संरचनाओं एवं परिस्थितिकी तंत्र के ह्रास से जुड़ी होती है। अतएव इससे जलवायु प्रभाव से पड़ने वाले जोखिम में वृद्धि होती है। जलवायु परिवर्तन विशेषकर महिलाओं के लिए अत्यन्त खराब है क्योंकि विश्व के गरीबों में उनकी संख्या ज्यादा है और इस वजह से उन्हें इनसे अधिक खतरा है। इतना ही नहीं जलवायु परिवर्तन की वजह से भी लोगों का गरीबी से बाहर निकल पाना कठिन हो जाता है।

विश्वभर में मौसम की ज्यादती पुरुषों के बजाए महिलाओं को ज्यादा मारती है। ज्यादती के बढ़ने के साथ ही साथ लैंगिक असंतुलन बढ़ता जाता है। बांग्लादेश में सन् 1991 में आये समुद्री तूफान में मारे गये 1 लाख 50 हजार व्यक्तियों में से 90 प्रतिशत महिलाएं थीं। इन विध्वंसों में बचे हुए लोग गरीबी, सामाजिक नियंत्रणों और निर्णय लेने की भूमिका संबंधी सामाजिक परिस्थितियों या आडम्बरों से भी प्रभावित होते हैं। उन्हें तैरने जैसी सामान्य गतिविधि का मूलभूत ज्ञान भी नहीं होता। यदि वे कहीं आकस्मिक तौर पर रहने की व्यवस्था कर भी लेते हैं तो महिलाओं और लड़कियों के खिलाफ हिंसा का जोखिम भी बढ़ जाता है। महिलाओं को मच्छरों से काटने वाली बीमारियों का खतरा भी ज्यादा होता है क्योंकि पानी लाने एवं फसल काटने जैसे कार्य वे ही करती हैं, जिसमें कि मच्छरों से निकट सम्पर्क ज्यादा होता है। बाढ़ के बाद अत्यधिक नमी के साथ तापमान वृद्धि की वजह से मलेरिया, डेंगू और चिकनगुनिया जैसी बीमारियों की आशंका बढ़ जाती है। बच्चों के साथ ही साथ गर्भवती महिलाओं को भी मलेरिया का खतरा ज्यादा होता है। बीमारी या महामारी फैलने की दशा में महिलाएं ही शुश्रूषा ज्यादा करती हैं, इससे उनकी आर्थिक उत्पादकता को भी नुकसान होता है।

बढ़ती खाद्य असुरक्षा भी महिलाओं और लड़कियों को ज्यादा प्रभावित करती है। महिलाओं को कुछ पोषण तत्त्वों की आवश्यकता पुरुषों एवं लड़कों से अधिक होती है, वह भी उनके कठोर परिश्रम पर जाने की आयु के पूर्व। कुछ संस्कृतियों में महिलाएं एवं बच्चे तब तक खाना नहीं खाते जब तक कि वयस्क पुरुषों ने अपना पूरा पेट न भर लिया हो। इससे भी महिलाओं का स्वास्थ्य को खतरा बढ़ जाता है, क्योंकि परिवारों में भोजन की कमी तो बनी ही रहती है। चूंकि भोजन की कमी लगातार बढ़ती जा रही है और यह महंगा भी होता जा रहा है। ऐसे में महिलाएं परिवार को भोजन उपलब्ध करवाने के एवज में अपनी दवाई सहित अनेक अनिवार्य वस्तुओं का त्याग कर देती हैं। पानी की कमी के चलते, उन्हें भारी वजन लेकर लम्बी दूरी तय करना पड़ती है। यह न केवल स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है बल्कि इससे महिलाओं की आय अर्जन संबंधी गतिविधियों एवं शिक्षा में भागीदारी घटती है। इतना ही नहीं इससे लैंगिक समानता के अवसर और अधिक सीमित हो जाते हैं। अधिक तापमान शारीरिक श्रम की क्षमता को भी सीधे-सीधे सीमित कर देता है। भोजन, पानी और भूमि की बढ़ती कमी से भविष्य में संघर्ष बढ़ेंगे और जबरिया पलायन भी होगा। सामाजिक विघटन की ऐसी स्थिति में महिलाओं और लड़कियों के खिलाफ हिंसा में वृद्धि होगी। एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि जलवायु परिवर्तन के प्रमुख कारक महिलाओं एवं लड़कियों के स्वास्थ्य को सीधे-सीधे नुकसान पहुंचाते हैं। घर के अंदर लकड़ी से खाना बनाने की वजह से प्रदूषण होता है और यहां भी सर्वाधिक प्रभावित लड़कियां और महिलाएं ही होती हैं। चूल्हे से फैले प्रदूषण की वजह से फेफड़ों की क्षमता में कमी, टीबी एवं निमोनिया जैसी बीमारियां भी बड़ी संख्या में होती हैं। प्रतिवर्ष करीब विश्वभर में 40 लाख महिलाएं समय से पूर्व ही मृत्यु की शिकार हो जाती हैं।

भविष्य का रास्ता : सौभाग्यवश अमीर देश काफी कुछ कर सकते हैं। वह अपना उत्सर्जन कम करने के साथ ही साथ सोची समझी विकास परियोजनाओं की वजह से जोखिम में पड़े समुदायों की गरीबी में कमी, स्वास्थ्य की बेहतर व्यवस्था, जलवायु परिवर्तन पर रोक एवं महिलाओं का सशक्तीकरण सम्भव है। सुस्थिर कृषि तकनीकों का शिक्षण, या घरों में पानी और सौर ऊर्जा के लिए अधोसंरचना उपलब्ध करवाने वाली परियोजनाएं तैयार की जा सकती हैं। बायोगैस संयंत्र एक ऐसी तकनीक है, जिससे बहुत सारे लाभ प्राप्त हो सकते हैं। इससे समानांतर तौर पर सेनिटेशन और गोबर प्रबंधन के साथ मुफ्त एवं भोजन पकाने हेतु साफ ईंधन विकल्प के साथ ही जैविक खाद भी प्राप्त हो सकती है। बायोगैस प्रणाली से सीधे-सीधे स्वास्थ्य में सुधार (पेट संबंधी, आंख संबंधी एवं सांस संबंध बीमारियां) होता है एवं इससे कार्बन उत्सर्जन एवं वनों के विनाश में भी कमी आएगी। बेहतर कृषि प्रणालियां एवं खाद्य उत्पादन के चलते आमदनी बढ़ने के गरीबी से छुटकारा मिलेगा। गौरतलब है उपरोक्त भूमिका अकसर महिलाएं ही निभाती हैं। स्थानीय समुदाय को साथ लेकर जीवन परिवर्तन के अनगिनत अवसर पैदा किए जा सकते हैं। महिलाओं और उनके समुदायों को स्वास्थ्य एवं आर्थिक लाभ तुरंत पहुंचाए जाने की आवश्यकता है। दीर्घावधि उपायों में कार्बन उत्सर्जन की कमी और समुदायों में लचीलापन पैदा करना शामिल है। उत्सर्जन में कमी को हम जितना टालेंगे वह अधिक महंगा और कम प्रभावशाली होता जाएगा, इसमें बहुत सारे लोग मारे जाएंगे। इनमें से अधिकांश महिलाएं ही होंगी। पेरिस सम्मेलन में एक सोद्देश्य वैश्विक समझौतों पर सहमति अब सन्निकट दीख पड़ती है। समय आ गया है कि जब विश्व कोयले पर अपनी निर्भरता समाप्त करने और इसके बदले स्वच्छ ऊर्जा और अधिक स्वस्थ, अधिक समृद्ध एवं लैंगिक समानता वाले भविष्य की ओर कूच करे। ❑

देवों और राक्षसों की परम्परा

❑ दादा धर्माधिकारी

समाज के विकास में एक ऐसा मुकाम आया, जहां से लोकसत्ता का आरंभ हुआ। लेकिन इसका अधिष्ठान मनुष्यों के स्वभाव में है। हमें देखना है कि हमारी परम्परा में यह अधिष्ठान कहां है? संस्कृत भाषा में शैतान के लिए कोई शब्द नहीं है। 'राक्षस', 'दानव', 'दैत्य' ऐसे अनेक शब्द हैं, लेकिन हमारे इन राक्षसों, दानवों और दैत्यों में कुछ तो देवों के ही सौतेले-मौसेरे भाई थे और इनमें से बहुत-से तो देवभक्त और शिवभक्त भी थे। ये लोग शैतान नहीं हो सकते। शैतान के मुकाबले में इनकी कोई हस्ती नहीं है।

सोचने की बात है कि जिसकी कोख से कृष्ण पैदा हुआ, वह भी कंस की बहन हो सकती है। जिसकी कोख से प्रह्लाद पैदा हुआ, वह एक राक्षस हो सकता है। और जिसकी कोख से रावण पैदा हुआ, वह एक तपस्वी ब्राह्मण हो सकता है। यदि किसी ने दानवों को और राक्षसों को एक पृथक् योनि मान लिया है, तो वह 'नास्तिक' है। तपस्वी पतित होता है, तो राक्षस हो जाता है। कंस, शिशुपाल, हिरण्यकश्यपु, हिरण्याक्ष, रावण-कुम्भकर्ण, ये विष्णु के द्वारपाल जय-विजय थे। ये शाप-भ्रष्ट तपस्वी थे। इसलिए राक्षसों की कोई अलग योनि नहीं मानी गयी है। पुराणों में वर्णन आता है कि जो-जो राक्षस मरा, वह मरते ही भगवान् में समा गया। उसमें से ज्योति निकली और विष्णु में समा गयी। शिशुपाल का शिरच्छेद होते ही ज्योति निकली और भगवान् में समा गयी। कंस मरा, ज्योति निकली और कृष्ण में समा गयी। रावण से ज्योति निकली, राम में समा गयी। इसके बाद रावण और राम एक हो गये! यह शरीर ही उनके बीच में व्यवधान था। यह एक 'आस्तिकता' है और बहुत बड़ी आस्तिकता है। हमारे यहां शैतान के लिए भी भगवान् की सत्ता की आवश्यकता होती है। प्रकाश के बिना अँधेरा दिखाई नहीं देता। भगवान् की सत्ता न हो, तो शैतान दिखायी नहीं देता। शैतान का अपने में स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। बुराई अभावरूप है, दुर्गुण अभावरूप है। सद्गुण भावरूप है। इसलिए सारे दुर्गुण सुद्गुणों के आधार पर जीते हैं। दुर्गुण अपने आधार पर कभी जी नहीं सकता। उसे सद्गुण का आधार लेना पड़ता है। शैतान जीता है, तो भगवान् के आधार पर जीता है। इसे 'आस्तिकता' कहते हैं। यह लोकसत्ता का आधारभूत तत्त्व है। ❑

निमंत्रण

श्री चुनीभाई वैद्य स्मृति ग्रंथ लोकार्पण

गांधी मूल्यों के लिए समर्पित आजीवन योद्धा श्री चुनीभाई वैद्य की प्रथम पुण्यतिथि पर न्यायमूर्ति चन्द्रशेखर धर्माधिकारी, एकता परिषद् के अध्यक्ष पी. वी. राजगोपाल एवं वरिष्ठ अधिवक्ता श्री गिरीशभाई पटेल की विशेष उपस्थिति में चुनी काका के जीवन एवं कार्यों पर एक स्मृति ग्रंथ का लोकर्पण रखा गया है।

चुनी काका के सभी स्नेहियों एवं मित्रों की उपस्थिति सादर प्रार्थनीय है।

19 दिसंबर, 2015 (शनिवार) : सायं 4.00 बजे
कोचरब आश्रम, अहमदाबाद-380006 (गुजरात)

-: निमंत्रक :-

(गोविन्दभाई रावल)	(प्रकाश न. शाह)	(नीता महादेव)
अध्यक्ष	उपाध्यक्ष	मंत्री

गुजरात लोक समिति, लाल दरवाजा, अहमदाबाद-380001
फोन : 079-27557199/27557878, E-mail : gujaratloksamiti@yahoo.co.in

पर्यावरण

पर्यावरण, स्वास्थ्य व आर्थिक मंदी

❑ डॉ. ओ. पी. जोशी

विश्व बैंक ने भी अपने एक वक्तव्य में कहा है कि वर्ष 2015 में वैश्विक वृद्धि दर (ग्लोबल ग्रोथ रेट) कम ही रही है। आर्थिक व्यवस्था मनुष्य जीवन के कई आयामों से जुड़ी रहती है। अतः आर्थिक तेजी या मंदी मनुष्य को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित करती है।

पृथ्वी पर जिस प्रकार भूकम्प, ज्वालामुखी, बाढ़, सूखा, चक्रवात एवं सुनामी नामक प्राकृतिक आपदाएं आती रहती हैं, ठीक उसी प्रकार मनुष्य द्वारा स्थापित वैश्विक अर्थव्यवस्था में भी मंदी के झटके आते रहते हैं। सबसे पहले सन् 1930 के आसपास दुनिया के बाजारों में भयानक मंदी आयी थी। वर्ष 2007 एवं 2008 में अमेरिका मंदी के दौर से गुजरा। ग्रीस में यह संकट अभी भी जारी है। दुनिया भर में दबी जुबान से मंदी का खतरा बताया जा रहा है।

विश्व बैंक ने भी अपने एक वक्तव्य में कहा है कि वर्ष 2015 में वैश्विक वृद्धि दर (ग्लोबल ग्रोथ रेट) कम ही रही है। आर्थिक व्यवस्था मनुष्य जीवन के कई आयामों से जुड़ी रहती है। अतः आर्थिक तेजी या मंदी मनुष्य को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित करती है। मंदी के दौरान शिशु जन्म, मानव स्वास्थ्य व पर्यावरण पर होने वाले प्रभावों के संदर्भ में वैज्ञानिकों ने कुछ प्रारम्भिक अध्ययन किये हैं। कोपनहेगन बिजनेस स्कूल में अर्थशास्त्र की प्रोफेसर सुश्री अर्जा वर्डा डोटीर ने अध्ययन कर बताया कि मंदी में पैदा शिशुओं के वजन में औसतन 120 ग्राम कमी देखी गयी। आइसलैंड में वर्ष 2008 में आयी अचानक मंदी के बाद राष्ट्रीय जन्म रजिस्टर में दर्ज रिकार्ड के आधार पर यह अध्ययन कर जर्मनी के मानहेम में यूरोपीय इकॉनामिक एसोसिएशन के सम्मेलन में प्रस्तुत किया गया। शिशुओं के वजन में आयी कमी का कोई स्पष्ट एवं ठोस कारण तो नहीं बताया गया परंतु यह सम्भावना है कि मंदी के कारण महिलाओं को गर्भावस्था के समय उचित पोषक आहार न मिला हो। अमेरिका में किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार मंदी लोगों में मोटापा भी बढ़ाती है। मंदी के समय लोग ज्यादा चिन्तित एवं थोड़े निराश रहते हैं।

अपनी चिन्ता एवं निराशा को कम करने हेतु वे फास्ट-फूड एवं स्नेक्स आदि का ज्यादा सेवन करने लगते हैं। यही मोटापे का कारण बनता है। कार्यालयों में कार्यरत 43 प्रतिशत से ज्यादा कर्मचारियों ने माना कि चिन्ता में ज्यादा खाने से उनका वजन बढ़ा है। पुरुषों की तुलना में महिलाओं का वजन ज्यादा बढ़ा। उनका औसतन वजन 8 से 10 पौंड तक बढ़ा। ब्रिटेन विश्वविद्यालय के पोषण आहार विशेषज्ञों (डायटीशियंस) तथा जीवन वैज्ञानिकों (बायलॉजिस्ट) ने सन् 1880 से 1990 (110 वर्ष) के बीच यूरोप के 15 देशों के लोगों पर आहार आधारित अध्ययन किया। अध्ययन के परिणाम में बताया कि ब्रिटेन, नीदरलैंड, आयरलैंड, आस्ट्रिया, बेल्जियम तथा स्कैंडेनिविया में दोनों विश्वयुद्ध तथा मंदी के दौरान पुरुषों की ऊंचाई में लगभग ग्यारह सेंटीमीटर का इजाफा हुआ। इसे इस प्रकार समझाया गया कि मंदी के समय में परिवार का आकार छोटा रखने पर ध्यान दिया गया। इससे कम बच्चे पैदा हुए एवं इसका प्रभाव उनकी ऊंचाई पर हुआ। यह अध्ययन रिपोर्ट तैयार करने वाले प्रो. टी. हेमटन के अनुसार पूर्व में भी कुछ वैज्ञानिक प्रजनन में कमी को ऊंचाई बढ़ने से जोड़कर अध्ययन कर चुके हैं। पर्यावरण के संदर्भ में वर्ष 2007-08 की मंदी से कार्बन डाईऑक्साइड का उत्सर्जन घट गया।

नीदरलैंड स्थित एनवायरमेंटल एसेसमेंट एजेंसी ने अपने अध्ययन में पाया कि वर्ष 2000 से 2005 के मध्य वैश्विक स्तर पर कार्बन डाईऑक्साइड की वृद्धि दर 18 प्रतिशत के लगभग रही। वर्ष 2000 के बाद वृद्धि 4 प्रतिशत से बढ़ी लेकिन सन् 2008 में घटकर 1.7 से 2 प्रतिशत के मध्य रह गयी। घटने का कारण यह बताया गया कि मंदी के कारण यातायात, कारखानों में उत्पादन तथा कई अन्य गतिविधियों में कमी आयी जिसके फलस्वरूप उत्सर्जन घट गया। हड़तालों के समय कम गतिविधियों से प्रदूषण में कमी का आकलन भी किया गया है। मुम्बई में वर्ष 2000 में परिवहन हड़ताल के कारण 18 स्थानों पर प्रदूषण के स्तर में 40 से 60 प्रतिशत तक की कमी आयी थी। एक अध्ययन यह भी दर्शाता है कि मंदी में पर्यावरण के प्रति चिन्ताएं घट जाती हैं।

वर्ष 2012 में ग्लोबल स्केन राडार नामक संस्था ने 22 देशों के 23 हजार लोगों पर एक सर्वेक्षण किया। परिणाम में बताया गया कि वर्ष 2007-08 की मंदी के बाद वर्ष 2010-11 में पर्यावरण के प्रति लोगों की चिन्ताएं काफी कम हो गयीं। नब्बे के दशक में लोग प्रदूषण ग्लोबल वार्मिंग, जैव-विविधता संरक्षण, शुद्ध पेयजल प्राप्ति व जलवायु परिवर्तन आदि समस्याओं पर गहन चिन्ता रखते थे। परंतु अब इनके प्रति ज्यादा सरोकार नहीं रखते। मंदी के कारण पर्यावरण पर पहले औद्योगिक देशों ने कम ध्यान दिया परंतु बाद में चीन व ब्राजील जैसे देश भी पर्यावरण की चिन्ता छोड़ते नजर आये। मई 2014 में हमारे देश में बनी केन्द्र की नई सरकार भी विकास दर तेज करने हेतु पर्यावरण की अनदेखी कर रही है भविष्य में इसके गंभीर व भयानक परिणाम सामने आयेंगे। ❑

कृषि

कितने सुरक्षित हैं मिट्टी के लिए कृषि रसायन

❑ डॉ. दिनेश मणि

आज बढ़ते मुंह और घटते भोजन के बीच की खाई को पाटना न केवल भारत अपितु सारे विश्व के लिए एक महत्त्वपूर्ण समस्या है। हमारे प्राचीन ग्रंथों में कहा गया है कि *''भूख के समान न तो कोई दुख है, न ही इसके समान दुखदायी कोई रोग है। क्रोध के समान कोई शत्रु नहीं है और भोजन के समान कोई भी सुख नहीं है।''* किन्तु इसे एक विडम्बना ही कहा जाएगा कि आज एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के कई देशों की लगभग आधी जनसंख्या दोनों समय भरपेट भोजन से वंचित रहती है।

इसमें सन्देह नहीं कि निरंतर बढ़ती जनसंख्या के लिए भोजन उपलब्ध कराने हेतु भूमि के प्रति इकाई भाग से अधिकाधिक उपज लेना अनिवार्य हो गया है। कृषि के पुराने तरीके बढ़ती खाद्य सामग्री की मांग को पूरा करने में सक्षम नहीं थे। फलस्वरूप कृषि के आधुनिक तरीकों (जिनमें रासायनिक उर्वरक तथा कीटनाशी रसायनों का उपयोग भी शामिल है) को अपनाना आवश्यक समझा गया। यह सच है कि फसलों से अच्छी उपज लेने के लिए रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशी रसायनों के अतिरिक्त अन्य कोई साधन तुरंत कारगर नहीं हैं किन्तु इन विषैले रसायनों के प्रति सजग और सचेष्ट रहना समय की मांग है।

रासायनिक उर्वरकों का अंधाधुंध प्रयोग मिट्टी को प्रदूषित कर उसके भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुणों पर विपरीत प्रभाव डाल सकता है। उदाहरण के लिए अमोनियम सल्फेट के लगातार प्रयोग से अमोनिया तो फसल द्वारा इस्तेमाल होता रहता है और सल्फेट आयन धीरे-धीरे मिट्टी में बढ़ते जाते हैं जो मिट्टी को अम्लीय बना देते हैं। इसी प्रकार सोडियम नाइट्रेट और पोटैशियम नाइट्रेट के लगातार उपयोग से भी ऐसा ही हो सकता है। नाइट्रेट तत्त्व फसल द्वारा सोख लिया जाता है और सोडियम तथा पोटैशियम की मात्रा मिट्टी में बढ़ती रहती है। फलस्वरूप मिट्टी की संरचना पर प्रतिकूल असर पड़ता है। यही नहीं, पौधे उर्वरकों के नाइट्रेट तत्त्वों का कुछ ही भाग उपयोग में ला पाते हैं और इन तत्त्वों का एक बड़ा हिस्सा मिट्टी में एकत्र होता रहता है, जो वर्षा के पानी के साथ रिसकर पृथ्वी के भीतर जाकर भूमिगत जल में नाइट्रेट आयनों की सान्द्रता में वृद्धि करता है। इस जल के उपयोग से नवजात शिशुओं में 'मेट-हीमोग्लोबोनीमिया' या 'ब्लू-बेबी डिजीज' नामक बीमारी की सम्भावना बढ़ जाती है। कुछ शोधों से यह निष्कर्ष भी निकला है कि ये नाइट्रेट आयन कैंसर जैसी बीमारी भी पैदा कर सकते हैं। रासायनिक उर्वरकों के अधिक इस्तेमाल से सिंचाई की भी अधिक आवश्यकता पड़ती है और यह प्रक्रिया मिट्टी को लवणीय बना सकती है। लवणीय भूमि फसल उगाने के लिए अनुपयुक्त हो सकती है।

विश्व भर में संश्लेषित कार्बनिक रसायनों का उत्पादन पिछले दशक में चौगुना हो गया है। आज नये-नये संश्लेषित रसायनों की अचानक बाढ़-सी आ गयी है। एक ताजा अनुमान के अनुसार अब तक 40 लाख से अधिक रसायन प्राकृतिक पदार्थों से पृथक या संश्लेषित किए जा चुके हैं। इनमें से लगभग 60 हजार से अधिक रसायनों का प्रयोग हमारे दैनिक जीवन में होता है—लगभग 1500 रसायन कीटनाशियों में सक्रिय घटक के रूप में, 4 हजार औषधियों और अर्द्ध-औषधियों के रूप में तथा 5,500 खाद्य योजकों के रूप में प्रयुक्त होते हैं। शेष 49 हजार का वर्गीकरण मोटे तौर पर औद्योगिक और कृषि रसायनों ईंधन और रोगन, सीमेंट, सौन्दर्य प्रसाधन, प्लास्टिक तथा रेशों जैसे उपभोक्ता उत्पादों के रूप में किया जा सकता है। अपने देश में तथा विश्व के अन्य देशों में हुए अनुसंधानों में अब यह स्पष्ट हो चुका है कि इन रसायनों में से कुछ या सभी हमारे कामकाजी और आवासीय पर्यावरण में वायु, जल और मृदा प्रदूषकों के रूप में आ जाते हैं। उत्पादन और उपयोग के दौरान बचे रसायनों के लिए सारा पर्यावरण एक 'रद्दी की टोकरी' बना हुआ है। यदि रासायनिक प्रदूषण की यह प्रक्रिया आबाध गति से चलती रही तो जीवन के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लग जायेगा।

कीटनाशी रसायनों का उपयोग फसलों को कीड़ों से बचाने के लिए होता है किन्तु इनका निरंतर अधिक उपयोग मृदा, जल तथा वायु को प्रदूषित कर रहा है। कीटनाशी रसायनों का दीर्घ स्थायित्व ही प्रदूषण का मुख्य कारण है। कुछ रसायन तो इतने स्थायी हैं कि एक बार प्रयोग करने के बाद इनके अवशेष वर्षों तक मृदा में विद्यमान रहते हैं। मृदा में आर्गेनोक्लोरीन कीटनाशियों की स्थिरता पर बहुत शोध किये गये हैं। डी. डी. टी. एवं इससे मिलते-जुलते अन्य हाइड्रोकार्बन वातावरण में बहुत लम्बे समय तक रहते हैं। ये आहार-शृंखला द्वारा एक निकाय से दूसरे निकाय में पहुंचते हैं। प्रकृति में इनका विघटन बहुत धीरे-धीरे होता है। इसलिए जब पौधे इन रसायनों की कुछ-न-कुछ मात्रा अपने भोजन के रूप में इस्तेमाल करते हैं तो ये उनके ऊतकों में जमा हो जाते हैं और उसके बाद अगर इन पौधों का इस्तेमाल बड़े मांसाहारी जानवर या मनुष्य अपने भोजन के रूप में करते हैं तो उनमें ये काफी अधिक मात्रा में पहुंच जाते हैं।

डी.डी.टी., बी.एच.सी., हेप्टाक्लोर लिन्डेन आदि आर्गेनोक्लोरीन कीटनाशियों की अपेक्षा आर्गेनोफास्फेट कीटनाशी रसायन कम हानिकारक माने जाते हैं क्योंकि ये जल्दी विघटित हो जाते हैं तथा पेड़-पौधे, पशु इत्यादि के शरीर में अधिक मात्रा में जमा नहीं हो पाते। यद्यपि कीटनाशी रसायनों तथा अन्य विषैले प्रदूषकों का प्राकृतिक अपक्षय भी होता रहता है परंतु कुछ कीटनाशी रसायनों के अवशेष मृदा जैव मंडल में बहुत समय तक विद्यमान रहते हैं। ये अवशेष मृदा में उपस्थित लाभकारी जीवाणुओं तथा अन्य सूक्ष्म-जीवों को, जो मृदा की उर्वरता के लिए महत्त्वपूर्ण हैं, कुप्रभावित कर उनकी क्रियाशीलता को कम कर देते हैं। कुछ रसायन तथा उनके अवशेष इतने स्थायी देखे गये हैं कि एक बार उपयोग करने के बाद उनके अवशेष वर्षों तक मृदा में विद्यमान रहते हैं। आर्गेनोक्लोरीन रसायनों के दीर्घकालीन प्रयोग पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। यद्यपि आर्गेनोफॉस्फेट, कार्बोनेट आदि रसायन अल्प स्थायी हैं पर इनके तीक्ष्ण विषाक्त गुण पर्यावरण को अपने प्रभाव से अछूता नहीं रखे हैं। इन कीटनाशी रसायनों के स्थायित्व का अध्ययन पर्यावरण की सुरक्षा की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है।

इन कृषि रसायनों के दुष्प्रभाव से बचने के लिए इनके प्रयोग में सावधानी बरतने की आवश्यकता है। इन रसायनों का प्रयोग एकाएक बंद तो नहीं किया जा सकता परंतु धीरे-धीरे इनकी मात्रा कम अवश्य की जा सकती है। इनके लिए किसानों को ऐसी फसल किस्मों का चयन होगा जिनमें कीटों के प्रकोप की सम्भावनाएं कम से कम हों। साथ ही सिंचित अथवा असिंचित कृषि भूमि के अनुरूप ही फसलें बोई जाएं। उदाहरण के तौर पर सिंचित भूमि से गेहूं, धान आदि की फसलें उगायी जाएं और असिंचित भूमि से चना एवं मटर जैसी कम सिंचाई वाली फसलें ली जाएं। समुचित फसल चक्र अपना कर भी हम फसलों को विभिन्न प्रकार के कीटों एवं रोगों से बचा सकते हैं। ('इंडिया वाटर पोर्टल, हिन्दी' से)

मत-सम्मत

खत्म हो सकती है भूख एवं गरीबी

❑ कनग राजा

सन् 2030 तक भूख और गरीबी से त्रस्त निर्धनतमों के दुश्चक्र को तोड़ने के लिए हमें अपने विचारों में नाटकीय परिवर्तन लाने होंगे। हमें अत्यन्त जोखिम में पड़े व्यक्तियों पर निवेश करना होगा। साथ ही साथ यह भी सुनिश्चित करना होगा कि ऐसे औजारों की आवश्यकता है, जो उन्हें केवल भूख से ही मुक्ति न दिलाएं बल्कि उनके संसाधनों एवं क्षमताओं में भी वृद्धि करें।

संयुक्त राष्ट्र संघ की एक नवीनतम रिपोर्ट में कहा गया है कि विश्व को सन् 2030 तक भूख से मुक्ति दिलाने के लिए सन् 2016 से 2030 तक प्रतिवर्ष 267 अरब अमेरिकी डॉलर की अतिरिक्त मदद की आवश्यकता पड़ेगी। रोम रिपोर्ट के अनुसार विश्व में अति गरीबी में रह रहे प्रत्येक व्यक्ति के लिए 15 वर्ष तक औसतन प्रति व्यक्ति 166 डॉलर की आवश्यकता पड़ेगी। इस रिपोर्ट को संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ.ए.ओ.) कृषि विकास हेतु अंतर्राष्ट्रीय कोष (आई.एफ.ए.डी.) और विश्व खाद्य कार्यक्रम (डब्ल्यू.एफ.पी.) ने तैयार किया है। इन तीनों एजेंसियों के प्रमुखों का कहना है, ''हम सन् 2030 तक गरीबी और भुखमरी समाप्त कर सकते हैं। परंतु इसके लिए हमें नई पहल करनी होगी, जिसमें सामाजिक सुरक्षा में सार्वजनिक निवेश बढ़ाने के साथ ही साथ सार्वजनिक एवं निजी प्रयासों में; उत्पादक क्षेत्रों में, विशेषकर कृषि में निवेश का स्तर 'हमेशा चलने वाले व्यापार' जैसे नजरिए से कहीं ज्यादा करना होगा। निवेश के बढ़ने से विकास दर एवं रोजगार में वृद्धि होगी, जिसके परिणामस्वरूप आमदनी भी बढ़ेगी। इसे इस तरह से तैयार और क्रियान्वित करना होगा, जिससे की शून्य भुखमरी की स्थिति प्राप्त की जा सके। इस प्रक्रिया से उत्पादकता और छोटे स्तर के उत्पादकों की आमदनी में वृद्धि होगी और गरीबों एवं वंचितों को व्यापक अवसर प्राप्त हो पायेंगे।

इन प्रमुखों के अनुसार गरीबों के हित में प्रतिवर्ष कुल 267 अरब डॉलर अतिरिक्त वित्तीय सहायता की आवश्यकता है, जिसमें से 151 अरब डॉलर उत्पादक क्षेत्रों में गरीबों की अतिरिक्त मदद हेतु निवेश, 105 अरब डॉलर ग्रामीण विकास एवं कृषि तथा 46 अरब डॉलर शहरी क्षेत्रों के लिए आवश्यक होंगे। उनका कहना है; ''स्थायी रूप से अति गरीब एवं भूख को मिटाने के लिए हमें ग्रामीण, कृषि उत्पादकता एवं आमदनी बढ़ाने के लिए निजी एवं सार्वजनिक दोनों निवेश बढ़ाने के साथ ही साथ उत्पादक सुस्थिर एवं समावेशी खाद्य प्रणाली को प्रोत्साहित करना होगा। इस क्षेत्र में किसान निवेश का एक बड़ा स्रोत है। लेकिन ऋण की औपचारिक पद्धति और बीमा उद्योग अक्सर उनके प्रति भेदभावपूर्ण रवैया अपनाते हैं। खासकर छोटे पारिवारिक किसानों एवं गरीब व्यक्तियों के प्रति। इस दुष्चक्र को तोड़ने के लिए जो लोग अत्यधिक गरीब एवं भूखे हैं, उन्हें सामाजिक संरक्षण के माध्यम से मदद दी जानी चाहिए। यथोचित एवं ठीक से तैयार सामाजिक सुरक्षा इन लोगों की गरीबी, भूख और कुपोषण पर तेजी से काबू पाने में मदद करेगी।

एफ.ए.ओ. के डायरेक्टर जनरल जोस ग्रेझिआनो डॉ. सिल्वा का कहना है कि इस रिपोर्ट का संदेश एकदम स्पष्ट है, यदि हम

सन् 2030 तक ''अपनी पुरानी आदतें'' ही अपनाते रहेंगे तो हमारे पास भूख से निढाल 65 करोड़ व्यक्ति होंगे। अतिरिक्त चाही गयी रकम वैश्विक सकल घेरलू उत्पाद (जी.डी.पी.) की महज 0.3 प्रतिशत बैठती है। यह भूख को समाप्त करने हेतु चुकाई जाने वाली वस्तुतः बहुत छोटी कीमत है।

आई. एफ. ए. डी. के अध्यक्ष कानायो एफ. का मानना है, ''रिपोर्ट हमारे सामने चुनौती की व्यापकता लाती है। लेकिन हमारा विश्वास है कि हम भूख और गरीबी में तब तक कमी नहीं ला सकते जब तक कि हम गंभीरता से ग्रामीण व्यक्तियों में निवेश नहीं करते।

यदि छोटे कृषि उत्पादकों एवं ग्रामीण उद्यमियों को ठीक प्रकार के औजार एवं संसाधन उपलब्ध करा दिए जाएं तो वे इन संघर्षरत समुदायों को फलते-फूलते स्थानों में बदल सकते हैं। डब्ल्यू.एफ.पी. की कार्यकारी निर्देशक ईथारिन कजिन का कहना है कि ''सन् 2030 तक भूख और गरीबी से त्रस्त निर्धनतमों के दुश्चक्र को तोड़ने के लिए हमें अपने विचारों में नाटकीय परिवर्तन लाने होंगे। हमें अत्यन्त जोखिम में पड़े व्यक्तियों पर निवेश करना होगा। साथ ही साथ यह भी सुनिश्चित करना होगा कि ऐसे औजारों की आवश्यकता है, जो उन्हें केवल भूख से ही मुक्ति न दिलाएं बल्कि उनके संसाधनों एवं क्षमताओं में भी वृद्धि करें।'' रिपोर्ट के अनुसार पिछले दशकों में हुई ऐसी प्रगति के बावजूद, जिसके माध्यम से हम शताब्दी विकास लक्ष्य प्राप्ति के बहुत नजदीक तक पहुंच ही गए हैं, के बावजूद सन् 2015 के अंत तक विश्व के करीब 79.50 करोड़ व्यक्ति यानी प्रत्येक 9 में से 1 अल्प पोषण या भूख से पीड़ित है। सन् 2030 तक भूख से छुटकारा संबंधी प्रस्ताव सं. रा. संघ की 70वीं साधारण सभा में पारित सुस्थिर विकास लक्ष्य (एस.डी.जी.) में दूसरे क्रम पर है। भूख से मुक्ति सं. रां. संघ महासचिव द्वारा प्रोत्साहित शून्य भूख अभियान (जीरो हंगर केम्पेन) और सुस्थिर विकास लक्ष्य क्रम 1 जिसमें सन् 2030 तक भूख से मुक्ति का प्रयास है, के काफी करीब है। सन् 2030 तक भूख से छुटकारा पाने हेतु आवश्यक है कि विश्व समुदाय ऐसे विकल्प एवं रास्ते अपनाए, जो कि प्रभावशाली सिद्ध हों एवं जिससे अल्प पोषितों को लगातार भोजन की उपलब्धता की पहुंच सुनिश्चित हो सके तथा गरीबों एवं भूखों के लिए रोजगार के अवसरों में सुधार हो।

अतिरिक्त निवेश के अनुमानों के निर्धारण हेतु रिपोर्ट की शुरुआत में बेसलाईन (आधारभूत) एवं चलताऊ रवैये का हवाला दिया गया है, जिसके आधार पर बताया गया है कि सन् 2030 तक 65 करोड़ व्यक्ति भूख या अपर्याप्त भोजन की समस्या से प्रभावित रहे होंगे। रिपोर्ट में इसी विरोधाभास को दर्शाते हुए सामाजिक सुरक्षा और निवेश के घटनाक्रम को जोड़ते हुए बताया गया है कि सार्वजनिक कोष से हस्तांतरण के द्वारा लोगों को दीर्घ भुखमरी से बाहर लाने के प्रयास को सुनिश्चित बनाने हेतु विश्व बैंक द्वारा तय गरीबी की सीमा रेखा 1.25 डॉलर प्रतिदिन भी आमदनी तक पहुंचा जाएगा। इस सामाजिक सुरक्षा हेतु प्रतिवर्ष 116 अरब डॉलर जिसमें से 75 अरब डॉलर ग्रामीण क्षेत्रों एवं 41 अरब डॉलर शहरी क्षेत्रों हेतु आवश्यकता पड़ेगी। इसी तरह गरीबों के हित हेतु अतिरिक्त निवेश के लिए 151 अरब डॉलर की आवश्यकता पड़ेगी, इसमें से 105 अरब डॉलर ग्रामीण क्षेत्रों के लिए एवं 46 अरब डॉलर शहरी क्षेत्रों के लिए चाहिए। यह रकम गरीबी में रह रहे व्यक्तियों को आमदनी बढ़ाने में मददगार सिद्ध होगी। इस तरह सामाजिक सुरक्षा एवं निवेश का कुल जोड़ 267 अरब डॉलर होता है।

शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबों का हितकारी निवेश जिसमें कृषि भी शामिल है, को बहुत व्यवस्थित ढंग से गरीबों की ओर लक्षित किया जाना चाहिए, जिससे कि गरीब इतना कमा सके कि गरीबी से निजात पा जाए। एफ. ए. ओ. के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब हितकारी निवेश छोटे स्तर की सिंचाई योजनाओं एवं ऐसी अधोसंरचना पर किया जाना चाहिए, जिससे कि वंचितों को लाभ मिल सके। इस प्रक्रिया में खाद्य प्रसंस्करण जैसे उपाय भी शामिल हैं, जिससे कि फसल के बाद की बर्बादी एवं हानि से बचा जा सके। इसके अलावा भूमि एवं पानी, ऋण सुविधाओं, श्रम कानूनों और अन्य क्षेत्रों में मजबूत सांस्थानिक इंतजाम किए जाने चाहिए। इसके अलावा अन्य क्षेत्रों, जैसे कृषि और कृषि से संबंधित अन्य गतिविधियों और बाजार तक भी पहुंच सीमांत समूहों की पहुंच, जिसमें महिलाएं एवं बच्चे भी शामिल हैं, की भी होना चाहिए। वहीं शहरी क्षेत्रों में अतिरिक्त निवेश के माध्यम से यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि जो लोग अति गरीबी में रह रहे हैं वे अंततः स्वयं के लिए कुछ कर पाएं। उदाहरणार्थ इस निवेश के माध्यम से उद्यमी क्षमता निर्माण और अन्य कौशल विकास जिसमें शिल्पकारी शामिल है, हेतु कार्य किया जा सकता है। इसके अलावा न्यायसंगत श्रम समझौते, ऋण सुविधाएं प्रदान करना, रहवास के साथ ही साथ पोषण संबंधी बेहतर सुविधाएं उपलब्ध करायी जाएं। ❑

वरिष्ठ गांधीवादी सहाय अस्वस्थ

वयोवृद्ध सर्वोदयी नेता एवं गांधीवादी विचारक श्री कृष्णचंद्र सहाय की ट्रेन में सफर के दौरान अचानक तबियत बिगड़ गयी, जिससे उन्हें अपनी यात्रा बीच में ही रोक देनी पड़ी।

लगभग 85 वर्षीय श्री सहाय जयपुर से इंटरसिटी एक्सप्रेस से लखनऊ जा रहे थे कि उनकी तबियत बिगड़ने लगी। उन्हें ट्रेन से स्टेशन पर उतार लिया गया। लताकुंज (बालूगंज रोड) स्थित समाजसेवी शशि शिरोमणि के आवास पर आप स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं। **–मधु सहाय जोशी**

दादा धर्माधिकारी-पुण्यतिथि 1 दिसंबर पर पावन स्मरण!

रामराज और हरामराज

❑ दादा धर्माधिकारी

सर्वोदय की व्यवस्था में कोई अपने लिए नहीं जीता। हरएक सबके लिए जीता है, इसलिए सब मिलकर सबकी संयुक्त भलाई सिद्ध करते हैं। अगर हरएक अपने-अपने लिए जीये तो जो सबसे तगड़ा होगा, वही सबसे अधिक सफल भी होगा। जो सबसे अधिक समर्थ होगा, वही जीवन का अधिकारी होगा। यह समाज धर्म नहीं है, इसे मत्स्य-न्याय कहते हैं। मत्स्य-न्याय से कोई समाज नहीं बनता। कोई झुंड तक नहीं बनता।

छुटपन में भूगोल का सबक याद करने के लिए दिया गया। आरम्भ भूगोल की परिभाषा से ही हुआ। पुस्तक में भूगोल की जो परिभाषा दी गयी थी, वह इस प्रकार थी : 'भूगोल मनुष्य के निवास-स्थान के रूप में पृथ्वी का विचार करता है।' मन में संदेह हुआ, क्या ऐसे भी कोई सामाजिक शास्त्र हैं, जो पृथ्वी का विचार मनुष्य के निवास-स्थान के नाते नहीं करते? पृथ्वी का विचार करते समय मनुष्य को छोड़ देते हैं? आज की व्यवस्थाओं और संयोजनों को देखने पर कुछ ऐसा ही मालूम होने लगता है। *विज्ञानों और शास्त्रों को और सब चीजों से मतलब है, मनुष्य से कम से कम मतलब है। सवाल यह है कि यह संसार मनुष्य के रहने लायक कैसे बन सकता है? आज उसमें साधन-सामग्री और उपकरण तेजी से बढ़ रहे हैं, लेकिन मनुष्य हलके-हलके तिरोहित होता जा रहा है।*

काफी पहले की बात है। एक रियासत की राजधानी में शहर से बाहर सुंदर बगीचे में बसा हुआ राजमहल देखने गया। वहां की एक-एक चीज अनुपम थी। देखते ही बनती थी। वे हाथीदांत के पलँग, सुंदर-सुंदर शीशे, चांदी से मढ़ी हुई कुर्सियां, और कोच। उस वैभव का कौन वर्णन करे? लेकिन उसमें मनुष्यता का स्पर्श कहीं नहीं था। महल के मालिक के स्पर्श की कोई निशानी नहीं थी। दफ्तर के बाबू से पूछा, 'यह महल किसका है?'

कुछ हँसकर बोले, 'यह खूब पूछा! महाराज का और किसका?

मैंने पूछा, 'महाराज कभी इसमें रहते हैं?

जवाब मिला, 'नहीं।'

'तो फिर इसमें कौन रहता है?'

उत्तर मिला, 'कोई नहीं।'

'तुम लोग कहां रहते हो?'

'अपने-अपने घरों में?'

'फिर यहां क्यों आते हो?'

'इसलिए कि यहां कोई रहने न पावे, इन शीशों में कोई देखने न पावे, इन मंचकों पर कोई सोने न पावे, इन कुर्सियों पर कोई बैठने न पावे। इसी काम के लिए हमको तैनात किया गया है और इसी की तनख्वाह मिलती है।'

उस वक्त वह बात कुछ अटपटी-सी जरूर लगी लेकिन स्वाभाविक भी मालूम हुई। लेकिन जब कभी उस महल की याद आती है, आज की दुनिया का चित्र आंखों के सामने खड़ा हो जाता है। दुनिया में उपकरण जुटाये जा रहे हैं। सुख के साधन इकट्ठे किये जा रहे हैं, रोज नयी-नयी सामग्रियों का उत्पादन बढ़ाया जाता है, लेकिन मनुष्यों के एक गिरोह को यह फिक्र है कि कहीं उन साधनों का उपयोग दूसरा गिरोह न कर ले। इसलिए मकान पर एक दूसरे को कब्जा न करने देने की ही हरेक को फिक्र है। मकान में भीड़ है। शोरगुल भी बहुत है। लेकिन रहने वालों का पता नहीं। एक दूसरे से झगड़ने वालों की रेलारेल, ठेलाठेल मची हुई है। कोई कहता है, यह प्रतियोगिता है, कोई कहता है स्वास्थ्यपूर्ण स्पर्द्धा है, कोई कहता है यह चढ़ा-ऊपरी मनुष्य का स्वभाव ही है। बात कहने की शास्त्रियों और वैज्ञानिकों की अनोखी सिफ्त होती है। मामूली आदमी इतना ही जानता है कि जो दुनिया बन रही है, वह मनुष्य के नाप की नहीं बन रही है। उसमें मनुष्य अपने आपको अजनबी, अपरिचित-सा पाता है।

सर्वोदय का उद्देश्य संसार को मनुष्य के नाप का, मनुष्य के जीने और फूलने-फलने के लिए अनुकूल बनाना है। 'मनुष्य के लिए' से मतलब किसी एक मनुष्य के लिए नहीं। 'मनुष्य के लिए' यानी हरएक मनुष्य के लिए, सब मनुष्यों के लिए। उपयोगितावादी 'मिल' ने कहा, 'हमारा उद्दिष्ट अधिक-से-अधिक मनुष्यों का अधिक-से-अधिक सुख है।' सर्वोदय के प्रवक्ता गांधीजी ने कहा, 'नहीं, नहीं। हमारा उद्दिष्ट सभी मनुष्यों की अधिक-से-अधिक भलाई है।'

'मिल' ने एक और बड़ी मजे की बात कह डाली। उसने कहा, 'अगर हरएक आदमी अपना-अपना भला देख ले, तो कुल मिलाकर सबका भला हो जाएगा।' 'मिल' का यह प्रमेय अगर गणित की भाषा में रखा जाय तो उसकी तर्कदुष्टता तुरंत ध्यान में आ जाएगी। 'मिल' का कहना है कि ''अगर 'अ' 'अ' का हित चाहे, 'ब' 'ब' का हित चाहे और 'क' 'क' का हित चाहे तो 'अबक'

मिलाकर 'अबक' का हित चाहेंगे। अर्थात अ+ब+क = अ×ब×क। मतलब यह कि 'मिल' के मत के अनुसार 'अबक' की भलाईयों का जोड़ 'अबक' के गुणाकार के बराबर यानी उनकी संयुक्त भलाई के बराबर है। *इसे सामाजिकता या समाजशीलता नहीं कहते। समाज का हरएक व्यक्ति यदि अपने लिए जीये तो सब मिलकर सबके लिए नहीं जीयेंगे। हरेक अपने लिए जीयेगा और अपने जीने के लिए दूसरों के जीने में रुकावट भी करेगा। इसी का नाम स्पर्द्धा, विग्रह, होड़ या संघर्ष है। स्वार्थों के इस विरोध में से आज के समाज की सारी उलझनें और दिक्कतें पैदा हुई हैं।*

जो नीचे है, वह ऊपर आना चाहता है और जो पीछे है, वह आगे आना चाहता है। नीचे वाले ऊपर वालों को दबोचकर ऊपर आने की कोशिश करते हैं और पीछे वाले आगे वालों को पीछे की तरफ खींचकर खुद आगे बढ़ना चाहते हैं। इसमें से वर्ग-संघर्ष की मनोवृत्ति पैदा होती है।

एक प्रसंग सहसा याद आता है। एक लड़का स्कूल में से झुंझलाता हुआ घर लौटा और सीधा देवघर में जाकर देवता की मूर्ति के सामने फूट-फूटकर रोने लगा और दांत पीसकर कुछ प्रार्थना करने लगा। पूछा, 'देवता से क्या कह रहे हो?' बोला, 'भगवान से विनती कर रहा हूं कि अगले जनम में मुझे मास्टर बना और इस मास्टर को लड़का बना। तो बेंत मार-मार कर मैं इसकी चमड़ी उधेड़ दूंगा। प्रभु इतनी तमन्ना पूरी करें।' कहावत है कि कुछ दिन सास के होते हैं और कुछ दिन बहू के। बहू मनाती है कि 'भगवान वह दिन जल्दी आने दे जब इस डाइन बुढ़िया की छाती पर मूंग दलूंगी।'

वर्ग-संघर्ष की भावना कुछ इसी तरह की मनोदशा पैदा करती है। मजदूर सोचता है कि 'जब मेरा राज होगा तो आज के सारे हुजूरों को कोल्हू में जोतूंगा। तब इन्हें पता चलेगा कि हमें क्या कष्ट होता है।' उसकी कल्पना के रामराज में आज के हुजूर मजूर बनेंगे और आज के मजूर हुजूर बनेंगे। श्रमिकों के अधिनायकत्व का यही अर्थ उसकी समझ में आता है। वह न आपका भौतिकवाद जानता है और न मार्क्सवादी क्रांति की प्रक्रिया। किसान मजदूरों की अनियंत्रित सत्ता का उसके दिल में जो अर्थ है वह इतना ही है, आज के किसान-मजदूर कल राजा बनेंगे और आज के अमीर-उमरा तथा सेठ-साहूकार उनके गुलाम बनेंगे। पुराने जमाने के यमदंड की कल्पना से इसकी कुछ तुलना की जा सकती है। यहां पर जो दूसरों के साथ जिस तरह का अन्याय करता है, उसे यमराज उसी तरह की सौगुनी यंत्रणा देते हैं। साधारण मनुष्य के दिल में वर्ग-संघर्ष प्रतिशोध और बदले की प्रक्रिया में परिणत हो जाता है।

अपनी विचारधारा की विशेषता बतलाने के लिए गांधीजी ने कहा था कि 'मेरे सपने के रामराज में राजा और रंक का रुतबा बराबरी का होगा।' बड़े-बड़े बुद्धिमानों ने उनकी बात को जबर्दस्ती गलत समझा। बड़ी कड़ी आलोचना हुई गांधीजी की। एक विद्वान आलोचक ने लिखा, 'क्या खूब, इस रामराज में राजा भी होंगे और रंक भी होंगे, ऐसे रामराज को जयरामजी की! वह गांधीजी को ही मुबारक हो।'

गांधीजी की बात ठंडे दिमाग से सोचने की फुर्सत किसे थी? अगर मैं यह कहूं कि हमारी समाज व्यवस्था में ब्राह्मण और भंगी समान होंगे तो क्या उसका यह मतलब होगा कि ब्राह्मण ब्राह्मण रहेगा और भंगी भंगी रहेगा? मेरे कथन के दो ही तर्कसंगत अर्थ हो सकते हैं। एक तो यह कि न ब्राह्मण ब्राह्मण होगा और न भंगी भंगी होगा। या फिर यह कि जो ब्राह्मण है व भंगी भी होगा, और जो भंगी है वह ब्राह्मण भी होगा। तभी ब्राह्मण और भंगी की प्रतिष्ठा तुल्य होगी। गांधीजी का मतलब यह था कि मेरे रामराज में राव ही रंक होगा और रंक ही राव होगा। यानी राव-रंक में कोई भेद नहीं रहेगा। आज का राव कल का रंक नहीं होगा और आज का रंक कल का राव नहीं होगा। जो आज हुजूर हैं वे हुजूर नहीं रहेंगे, जो मजूर हैं वे मजूर नहीं रहेंगे, दोनों हुजूर होंगे, दोनों मजूर होंगे। सभी हुजूर होंगे सभी मजूर होंगे। निषेधात्मक भाषा में न कोई हुजूर होगा न कोई मजूर होगा। इसे वर्गहीन समाज की भाषा कहते हैं। रामराज की भाषा में 'राम राजा, राम परजा, राम साहूकार' होगा। यह गांधीजी का रामराज है। और सब हरामराज है।

हरामराज का मतलब भी जरा समझ लें। जो दूसरे के भरोसे खाता है, उसे लोग मुफ्तखोर कहते हैं। मुफ्त के खाने वाले को हराम का खाने वाला भी कहते हैं। जो दूसरों की मेहनत का फल बगैर कीमत चुकाये चखता है, उसे हराम का खाने वाला कहते हैं। उचित परिश्रम के बिना उपभोग की सुविधा जिस व्यवस्था में हो वह हरामराज है। जुआ और सट्टा हरामराज के प्रमुख प्रतीक हैं। कम से कम मेहनत का ज्यादा से ज्यादा फल सट्टे और जुए का मूलभूत सिद्धांत है। हमने लाटरी में एक रुपये का टिकट खरीदा, बदले में एक मोटर मिल गयी। बड़े भाग्यवान साबित हुए। दूसरे ने भी एक रुपये का टिकट खरीदा, बदले में लेमनड्राप की एक टिकिया मिली। बेचारा अपनी किस्मत को कोसने लगा। इस तरह की समाज व्यवस्था में एक हदतक 'टका सेर भाजी टका सेर खाजा' वाला न्याय होता है। यह चौपट राज है। जिस अर्थव्यवस्था में मुफ्तखोरों की और अवकाशभोगियों की प्रतिष्ठा है वह रामराज नहीं, हरामराज है। उसमें सर्वोदय की गुंजाइश कहां?

सर्वोदय की व्यवस्था में कोई अपने लिए नहीं जीता। हरएक सबके लिए जीता है, इसलिए सब मिलकर सबकी संयुक्त भलाई सिद्ध करते हैं। अगर हरएक अपने-अपने लिए जीये तो जो सबसे तगड़ा होगा, वही सबसे अधिक सफल भी होगा। जो सबसे

अधिक समर्थ होगा, वही जीवन का अधिकारी होगा। यह समाज धर्म नहीं है, इसे मत्स्य-न्याय कहते हैं। मत्स्य-न्याय से कोई समाज नहीं बनता। कोई झुंड तक नहीं बनता। भेड़िया सबसे क्रूर और पेटू जानवर माना जाता है, लेकिन भेड़िये झुंड बनाकर रहते हैं। अर्थात वे एक दूसरे को नहीं खाते। भेड़िये भी एक दूसरे को खाने लगें, तो उनका झुंड नहीं बनेगा। चोर एक दूसरे की चोरी करने लगें तो उनका गिरोह नहीं बनेगा। उन्हें भी आपस में श्रीमान निबाहना होता है। सामाजिकता की यह शर्त है कि आदमी एक-दूसरे को न खाये और न चूसे। इसी का नाम तो अहिंसक और शोषणहीन समाज है।

विनोबा ने कहा है कि 'सर्वोदय का आरम्भ अंत्योदय से होता है।' रवि ठाकुर की भाषा में 'सबार नीचे सबार पीछे।' यानी जो सबसे नीचे और सबसे पीछे है, उसको इस पृथ्वी की विरासत मिलेगी। एक मित्र ने मुझसे कहा कि, 'विनोबा ने बड़ी जबर्दस्त बात कह दी। उसका तो यह मतलब हुआ कि जो सबसे नीचे है वह मीर होगा। और आज जो अव्वल है वह फिसड्डी होगा।' यह सर्वोदय की कल्पना नहीं है। आखिर पहला और फिसड्डी ये दो सिरे हैं। कौन-सा पहला और कौन-सा आखिरी, इसका निश्चय गुण के अनुसार होता है। लेकिन जब सभी समान गुणवान हों तो चाहे जिस सिरे से पहला गिन सकते हैं। पहले और आखिरी में कोई वास्तविक भेद नहीं होगा, दोनों बराबर होंगे। जैसे आज इस पृथ्वी पर पूरब और पश्चिम है, पृथ्वी गोल है, पूरब पश्चिम में परिणत हो जाती है और पश्चिम का ही पर्यवसान पूर्व में हो जाता है; उसी प्रकार सर्वोदय में न कोई आद्य होगा न अंत होगा। आदि और अंत दोनों समान होंगे। तभी तो अंत्योदय सर्वोदय होगा। सर्वोदय की प्रक्रिया का आरम्भ अंत्योदय से है। उसकी परिसमाप्ति विश्वोदय में है। सर्वोदय के मानी है सर्वतः उदय, सर्वात्रिक उदय और सार्वजनिक उदय। ❑

काका कालेलकर-जयंती 1 दिसंबर पर प्रस्तुति!

सामाजिक अर्थशास्त्र की बुनियाद

❑ काका कालेलकर

प्रतिमूल्य का सिद्धांत तो सही है, लेकिन जिस चीज को समाज लेता है, उसका बाजारू मूल्य देने को समाज या सरकार बाध्य नहीं है। मालिक को कितना प्रतिमूल्य दिया जाय, इसका निर्णय न मालिक कर सकता है न किसी अदालत का न्यायाधीश। वह तो पंचों के सुपुर्द होना चाहिए। और; पंच भी ऐसे होने चाहिए जो स्वयं पूंजीपति नहीं हैं, सरकारी कर्मचारी नहीं हैं, किसी पक्ष के नेता नहीं हैं लेकिन समस्त जनता के निःस्वार्थ सेवक हैं। अगर किसी समाज में ऐसों की काफी संख्या नहीं मिल सकती है तो उस समाज की सामाजिकता ही नष्ट हो गयी है।

बाजार में जब हम कोई चीज खरीदते हैं, तब उसकी कीमत या दाम देते हैं। बेचने वाले की बेचने की गरज और खरीदने वाले की खरीदने की उत्कंठा, इन दोनों पर मूल्य निर्भर रहता है। चीज खरीदने वाले कितने हैं, और बेचने वाले कितने हैं और कितने प्रमाण में चीज मिलती है, इन सब बातों का उसमें हिसाब होता है।

नतीजा यह होता है कि जिसे चीज की सबसे ज्यादा गरज है, उसे वह चीज नहीं मिलती, लेकिन जो ज्यादा दाम दे सकता है, उसी को मिलती है। अगर कोई गाड़ी किराये पर लेनी है, एक गरीब बच्चा गाड़ी में सवार होकर अपनी बूढ़ी मां के लिए दवा लाने के लिए जाना चाहता है, और दूसरी कोई धनिक की लड़की अपनी सहेली से मिलने जा रही है, तो गाड़ी उस बेचारे गरीब को नहीं मिलेगी। वह तो गरीबों को निचोड़कर जो धनी हुआ है, ऐसे की लड़की को ही मिलेगी। मांग और मुहैया (प्राप्यता) का कानून नीतिशून्य होता है, कभी-कभी अनीतिकारक होता है। सामाजिक न्याय का जिसे ख्याल है, वह मांग और मुहैया के कानून को तोड़कर भी सामाजिकता को स्वीकार करेगा।

एक ही घर की मोटर जब घर के दो बच्चों को चाहिए, तब स्कूल जाने वाले बच्चे का अधिकार विशेष माना जायेगा, खेलने-कूदने जाने वाले बच्चे के अधिकार उससे कम। यह सामाजिक न्याय है अथवा कहिये कि कौटुम्बिक न्याय है।

कौटुम्बिक न्याय को ही सामाजिक न्याय बनाना और उसके सामने मांग-मुहैया के कानून को गौण करना, यह है सब धर्मों की सीख। गांधीजी का सामाजिक धर्म भी इसी सिद्धांत को स्वीकार करता है। समाजवाद को भी यही मान्य है।

आजकल जो रेशनिंग चल रहा है, उसकी बुनियाद में यही सामाजिक नियम है। हालांकि उसका अमल अक्सर असामाजिक ढंग से होता है।

अब जब चीज का मालिक अपनी चीज को बेचना नहीं चाहता और दूसरे किसी को उसकी निहायत जरूरत हो तो क्या किया? कोई आदमी बीमारी से मृत्यु के किनारे पहुंच गया है और डॉक्टर उसे दवा ही देना नहीं चाहता, तो उसे हम बाध्य कर सकते हैं या नहीं? और जब बाध्य करते हैं तब हम उसे मुंहमांगा दाम देने के लिए बाध्य हैं या नहीं? यह एक बड़ा सवाल है। कुटुम्ब में घर का श्रेष्ठ पुरुष तय करता है कि फलानी चीज फलाने की होते हुए भी दूसरे की गरज ज्यादा है, इसलिए दूसरे को दी जाय। इसे कोई जबर्दस्ती नहीं

कहता, क्योंकि कुटुम्ब के सब व्यक्तियों के बीच एक दूसरे के प्रति आत्मीयता होती है।

समाज में सामाजिक नेता यही काम कर सकते हैं, लेकिन समाज के घटकों के अंदर इतनी आत्मीयता नहीं होती है, जितनी एक कुटुम्ब के अंदर होती है, इसलिए वहां पर यह विश्वास नहीं होता कि प्रेम के न्याय का ही अमल होगा। सामाजिक नेता का अधिकार नैतिक होता है। उसका निर्णय किसी व्यक्ति को मान्य न भी हो, उसके सामने हृदय झुक जाता है और उसका पालन करने में व्यक्ति को संतोष रहता है कि हमने अपनी हीन वृत्ति दबो दी और उच्च वृत्ति के वश हो गये।

लोकनियुक्त सरकार के मंत्री भी सामाजिक नेता के स्थान पर ही होते हैं। फर्क इतना ही है कि उनकी आज्ञा के पीछे कानून का बल होता है, जो सामाजिक होते हुए भी ऐसा प्रतीत नहीं होता कि वह प्रेममूलक है।

अब हमारे सामने बड़ा सवाल यह है कि सारे समाज की सेवा करने के लिए जो कल-कारखाने चलाये जाते हैं, उनका क्या किया जाय? पूंजीपतियों को मुनाफे के लोभ से उन्हें चलाने दिया जाय या ऐसा आग्रह रखा जाय कि समाज के हित के लिए ही वे चलाये जायं।

हरएक को अधिकार है कि उसे उसकी मेहनत का फल मिलता रहे। जिसकी जमीन है, वह किराया ले सकता है, जिसकी मेहनत है वह अपनी मजदूरी ले सकता है, जिसकी पूंजी है वह अपना सूद ले सकता है। तीनों को उनका मेहनताना देने के बाद बाकी का जो मुनाफा रहता है, वह न तो पूंजीपति को मिलना चाहिए, न जमीन के मालिक को, न मजदूर को। मुनाफा समाज की चीज है।

इस सिद्धांत के पालन में एक ही कठिनाई है। मनुष्य की आज की असामाजिक हालत में वही आदमी अपनी पूरी शक्ति लगाकर कल-कारखाना चलाता है, जिसको बेहद मुनाफा हासिल करने की गुंजाइश हो। जब पूंजीपति कोई कारखाना चलाता है तब खर्च कम आता है, नुकसान कम होता है, व्यवस्था अच्छी रहती है और लोगों को माल सस्ते दामों पर मिलता है। अगर वही कारखाना सरकार के द्वारा चलाया जाय तो इसमें खर्च बढ़ता है, चीजों का नुकसान ज्यादा होता है, लोगों को चीजें काफी मात्रा में जब चाहें तब मिलती भी नहीं।

यह बहुत पुरानी दलील है। इसी दलील के आधार पर राज करने का अधिकार भी नीलाम किया जाता था। किसी प्रांत की गवर्नरी किसी को चाहिए तो नीलाम बोलकर वह उसे ले सकता था और माना जाता था कि वही सबसे अच्छा तरीका है। अगर राज सस्ते में और आसानी से चलाना है तो वही नीलाम का तरीका आज भी पसंद करने लायक है। लेकिन लोकहित की दृष्टि से देखा जाय तो मुनाफे वाली असामाजिक वृत्ति को कभी भी स्थान नहीं दिया जाना चाहिए।

समाजहित को मान्य रखकर ही उसकी छत्रछाया के नीचे व्यक्ति को अपने हित की और मुनाफे की बात सोचनी चाहिए। ट्रस्टीशिप का अर्थ यही है कि पूंजीपति को स्वत्व का अधिकार सिर्फ उसकी मेहनत के जितना ही होना चाहिए। बाकी की पूंजी और मुनाफा वह समाज सेवा के लिए ही अपने पास रख सकता है। समाज हमेशा मानता आया है कि जिसने इतना धन कमाया और अपनी योग्यता सिद्ध की उसी के हाथों उस धन का समाज-सेवा के लिए वितरण हो जाय तो अच्छा ही है। अगर गो-सेवा के लिए कोई संस्था खड़ी की तो हम गो-सेवा के लिए बड़ा दान देने वाले किसी पूंजीपति को ही उस संस्था का प्रधान ट्रस्टी बनाते हैं। खयाल यह रहता है कि पैसे की अपव्यय नहीं होता। पैसे की कमी रही तो वही दानी अधिक धन ला देगा और व्यवस्था भी वही अच्छी रख सकता है, जो अपनी व्यवस्था-शक्ति से इतना धन कमाता है। दानी पूंजीपति भी कहता है कि जो धन मैंने दान में दिया उसका लोभ मैं कैसे कर सकता हूं? अपनी जेब में से उसमें मैं कुछ बढ़ा सकता हूं, उसमें से ले नहीं सकता हूं।

ग़ज़ल

❑ सईद फरीदी

आओ इक दीप मोहब्बत का जलाया जाये,
और नफरत के अँधेरे को मिटाया जाये।

जिसमें तफ़रीक ओ तअस्सुम का कहीं नाम न हो,
अपने इस देश को वह देश बनाया जाये।

जिस गुलिस्तां को दिया खून-ए-जिगर बापू ने,
उस गुलिस्तां को खिजाओं से बचाया जाये।

एक ही नाम है अल्लाह कहो या ईश्वर,
इस तराने को हर मोड़ पर गाया जाये।

ये भी इस सच्ची इबादत, चलो ये कर लें,
किसी मजलूम को सीने से लगाया जाये।

आज तो उसकी निजी सम्पत्ति मानी जाती है, वह सचमुच समाज की मूक सम्मति से उसके पास धरोहर के रूप में है। राष्ट्रहित के लिए अगर कोई जमीन, कारखाना या पूंजी देनी पड़ती है तब प्रतिमूल्य के रूप में वह उसकी बाजारू कीमत नहीं ले सकता। वह तो अधिक से अधिक अपनी जिन्दगी भर की मेहनत का मूल्य मांग सकता है। मुनाफा तो समाज का है। उस पर अगर व्यक्ति का अधिकार माना जाय तो कारखाने के पुराने-नये सब-के-सब कर्मचारियों का भी उसपर अधिकार है। समाज ही उन सबका प्रतिनिधि है।

प्रतिमूल्य का सिद्धांत तो सही है, लेकिन जिस चीज को समाज लेता है, उसका बाजारू मूल्य देने को समाज या सरकार बाध्य नहीं है। मालिक को कितना प्रतिमूल्य दिया जाय, इसका निर्णय न मालिक कर सकता है न किसी अदालत का न्यायाधीश। वह तो पंचों के सुपुर्द होना चाहिए। और; पंच भी ऐसे होने चाहिए जो स्वयं पूंजीपति नहीं हैं, सरकारी कर्मचारी नहीं हैं, किसी पक्ष के नेता नहीं हैं लेकिन समस्त जनता के निःस्वार्थ सेवक हैं। अगर किसी समाज में ऐसों की काफी संख्या नहीं मिल सकती है तो उस समाज की सामाजिकता ही नष्ट हो गयी है। ❑

कविताएं

तूफान के पिता गांधी

❑ रामधारी सिंह 'दिनकर'

देश में जिधर जाता हूं,
उधर ही एक आह्वान सुनता हूं।
'जड़ता को तोड़ने के लिए
भूकम्प लाओ।
घुप्प अँधेरे में फिर
अपनी मशाल जलाओ।
पूरे पहाड़ को हथेली पर उठाकर
पवनकुमार के समान तरजो।
कोई तूफान उठाने को
कवि, गरजो, गरजो, गरजो।'
सोचता हूं, मैं कब गरजा था?
जिसे लोग मेरा गर्जन समझते हैं,
वह असल में गांधी का था,
उस आंधी का था,
जिसने हमें जन्म दिया था।
तब भी हमने गांधी के
तूफान को ही देखा,
गांधी को नहीं।
वे तूफान और गर्जन के
पीछे बसते थे।
सच तो यह है
कि अपनी लीला में
तूफान और गर्जन को
शामिल होते देख
वे हँसते थे।
तूफान मोटी नहीं,
महीन आवाज से उठता है।
वह आवाज,
जो मोम के दीप के समान
एकान्त में जलती है,
और बाज नहीं,
कबूतर की चाल से चलती है।
गांधी तूफान के पिता
और बाजों के भी बाज थे
क्योंकि
वे नीरवता की आवाज थे। ❑

आओ इससे मुक्ति दिलाओ

❑ ऋशिवंश

अफसोस! सत्ता केन्द्र बहुत बुरे होने लगे
क्योंकि आदमी को समझाना है
इसलिए कहता हूं—रुको
विखंडन की अनंत संभावनाओं से भरा है
यह असंतुलित विकास
आदमी को आदमी से दूर करता है
जातियों को जातियों से तोड़ता है
यही पैदा करता है सौदागर सत्ताकेन्द्र
यही पैदा करता है बारूद के पहाड़
और यही पैदा करता है
कमजोर, निर्वीर्य और चरित्रहीन जनता
तथा नेता में स्वार्थ-सुख भोगने की अदम्य लालसा।
सरकारें अपने-अपने सुविधा-संतुलन वाले
त्रुटिपूर्ण निर्णय लेने लगी हैं
शासनाध्यक्ष अपने-अपने पारिवारिक हितों में
शासन के तेवर बदल देते हैं
ताकि अधिक से अधिक, अधिक समय तक
उनका रक्त सिंहासन भोगे
यही वह रोग है, जिससे पीड़ित हैं
सारे राष्ट्र, सम्पूर्ण पृथ्वी
क्योंकि हम भूल चुके हैं
अपना गौरवशाली अतीत
मनुष्य और मनुष्यता के चमकदार अध्याय
जहां बड़े-बड़े साम्राज्य ठुकरा दिये जाते थे
मात्र एक छोटे आदर्श के लिए
सामान्यजन होते थे विनयी-विद्याभ्यासी
और सेवा-भावना से सम्पन्न
इन्द्रियजित होने की उत्कंठा और अभ्यास से
समाज तेजोमय था
अहंकार ही तब सबसे बड़ा शत्रु हुआ करता था
काम-क्रोध-लोभ-मोह विकार चतुष्टय थे
आज यही सब विलोम रूप में वर्तमान हैं
आभूषण तुल्य हैं सारे विकार
जितना बड़ा क्रोधी और विवेकहीन
उतना पराक्रमी राजा,
जितना बड़ा कामी और संग्रही
उतना सफल शासनाध्यक्ष
विडम्बना! हा विडम्बना!!
कोई तो आओ कहीं से आओ
नरपशुओं की भीड़ से कोई तो नरश्रेष्ठ निकलो
अपने मजबूत निश्चय और आत्मिक तेज से
विसंगतियों का मुंह मोड़ने कोई तो आओ
पृथ्वी को द्वेष के गर्त से निकालकर
शांति-स्थापना करने कोई तो आओ। ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार। छपी प्रतियाँ : 1500